ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ
ಮಾನಸಗಂಗೋತ್ರಿ, ಮೈಸೂರು – 570 006.

Karnataka State Open University
Manasagangothri, Mysore - 570 006.

कर्नाटक संस्कृति और कन्नड साहित्य

M. A. Previous HINDI
Course / Paper - I

Block - 8

ಉನ್ನತ ಶಿಕ್ಷಣಕ್ಕಾಗಿ ಇರುವ ಅವಕಾಶಗಳನ್ನು ಹೆಚ್ಚಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮತ್ತು ಶಿಕ್ಷಣವನ್ನು ಪ್ರಜಾತಂತ್ರೀಕರಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯನ್ನು ಆರಂಭಿಸಲಾಗಿದೆ.

ರಾಷ್ಟ್ರೀಯ ಶಿಕ್ಷಣ ನೀತಿ 1986

The Open University system has been initiated in order to augment opportunities for higher education and as an instrument of democratising education.

National Education Policy 1986

हिन्दी एम .ए . प्रीवियस - प्रथम पत्र

KSOU
MGM -06

Hindi
Paper / Course - I

ब्लाक सं

8

" कर्नाटक संस्कृति और कन्नड साहित्य "

Unit No. 29 to 32 अनुक्रमणिका : -	Page No.

इकाई 29 कुवेंपुजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व 1 - 34

इकाई 30 शिवराम कारंत और मास्तिवेंकटेश अय्यंगार 35 - 62

इकाई 31 कन्नड की लेखिकाएँ 63 - 104

इकाई 32 कन्नड की वीर वनिताएँ 105 - 128

पाठ्यक्रम अभिकल्प तथा संपादकीय समिति

प्रो.एम.जी.कृष्णन
उप कुलपति तथा अध्यक्ष
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर - 6

प्रो.एस.एन.विक्रमराज अरस
डीन (शैक्षणिक) - संयोजक
क. रा. मु. वि. विद्यालय
मैसूर - 6

डॉ. तिप्पेस्वामी
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
मैसूर विश्वविद्यालय,
मानस गंगोत्री
मैसूर - 6

संपादक

बी. जी. चन्द्रलेखा
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय
मैसूर - 6

संयोजिका

पाठ्यक्रम के लेखक — **ब्लाक - 8.**

डॉ. शशिधर. एल. जी
रीडर, हिन्दी विभाग,
मैसूर विश्वविद्यालय,
मानस गंगोत्री
मैसूर - 6

इकाई 29 - 32 तक

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर शैक्षणिक अनुभाग द्वारा निर्मित।
सभी अधिकार सुरक्षित। कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना, इस कार्य के किसी भी अंश को किसी भी रूप में अनुलिपित या किसी अन्य माध्यम द्वारा प्रतिकृति नहीं किया जाएगा।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मानस गंगोत्री, मैसूर - 6 से प्राप्त की जा सकती है।
कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से ***रजिस्ट्रार (प्रशासन)*** *द्वारा मुद्रित व प्रकाशित।*

ब्लाक परिचय

प्रिय विद्यार्थि - बन्धु ,

आपने ब्लाक ७ के अंतर्गत इकाई २५ में ' कन्नड कहानी साहित्य का उद्‌भव और विकास ' , इकाई २६ में ' कन्नड उपन्यास साहित्य का उद्‌भव और विकास ' , इकाई २७ में ' कन्नड नाटक - साहित्य का विवेचन ' , तथा इकाई २८ में ' आधुनिक कन्नड काव्य का परिचयात्मक विवेचन ' के संबन्ध में विवेचन किया है।

प्रस्तुत ब्लॉक के अंतर्गत इकाई २९ में ' कुवेंपुजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व ' इकाई ३० ' शिवराम कारंत और मास्तिवेंकटेश अय्यंगार ' इकाई ३१ ' कन्नड की लेखिकाएँ ' तथा इकाई ३२ ' कन्नड की वीर वनिताए ' के संबन्ध में अध्ययन करेंगे। आप सब को शुभकामनाएँ।

डॉ.कांबले अशोक

अध्यक्ष,
हिन्दी अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर - 6

इकाई 29
कुवेंपुजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

29.0 - उद्देश्य ।
29.1 - प्रस्तावना ।
29.2 - कुवेंपुजी की जीवनी ।
29.3 - प्रेरणाएँ ।
29.4 - रचनाओं का विश्लेषण
29.5 - निष्कर्ष ।
29.6 - बोध प्रश्न ।
29.7 - नमूने का उत्तर ।
29.8 - सहायक पुस्तकें ।

29.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में कुवेंपुजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करेंगे । इस इकाई को पढने के बाद आप

- कुवेंपुजी की जीवनी को समझ सकेंगे ।
- कुवेंपुजी की पद्य रचनाओं से अवगत हो जायेंगे ।
- कुवेंपुजी की गद्य-कृतियों की समीक्षा कर सकेगें ।
- कुवेंपुजी के काव्य में अभिव्यक्त प्रकृति चित्रण की कृतियों में व्यक्ति मानवीय संवेदना को पहचान सकेंगे ।
- कुवेंपुजी की समाज सुधारवादी भावनाओं को समझ सकेंगे ।
- रामायण-दर्शनं की विशेषताओं को लिख सकेंगे ।
- कुवेंपुजी के विश्वमानव संदेश को समझ सकेंगे ।
- आधुनिक कन्नड साहित्य में कुवेंपुजी के स्थान को पहचान सकेंगे ।

29.1 प्रस्तावना

आधुनिक कन्नड-साहित्य में विशिषतः नवोदय कवियों में कुवेंपु अग्रगण्य कवि हैं । जिनका मूल नाम कुप्पळ्ळी वेंकटप्प के पुत्र पुट्टप्प है । मगर कन्नड साहित्य के क्षेत्र में वे कुवेंपु के नाम से ही विख्यात हैं । वे कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, आलोचक तथा जीवनी लेखख हैं । कुवेंपु प्रकृति के प्रिय आराधक हैं । उनका निसर्ग प्रेम सिर्फ उनकी प्रकृति सबन्धी कविताओं में ही नहीं, अपितु महाकाव्य में भी व्यक्त है । श्री रामायण दर्शनम् इनका प्रसिद्ध महाकाव्य है । प्रकृति एवं प्रेम परक कविताओं के अतिरिक्त कुवेंपु ने राष्ट्रीय कविताएँ भी लिखी हैं। उन्होंने अपने भावगीतों में अनेक प्रकार के नये प्रयोग किये । मानवीयता उनके साहित्य का केन्द्र विषय है। इसलिए वे न केवल कन्नड या कर्नाटक के कवि हैं बल्कि विश्व कवि माने जाते हैं ।

29.2 कुवेंपुजी की जीवनी

सह्याद्रिका अञ्चल 'मलेनाडु' कर्नाटक में प्रकृति-नटीका लीला-निकेतन है; वह कर्नाटकका 'लेक डिस्ट्रिक्ट' है जिसने कन्नड़के वर्ड्सवर्थ कवि कुवेम्पुको जन्म दिया है । पन्तजीके जीवनमें कूर्माञ्चल प्रदेशका जो स्थान है, वही कुवेम्पुजीके जीवनमें मलेनाडुका है । इसी श्यामल काननसे शोभित एवं पर्वतके उत्तुंग शिखरोंसे मण्डित प्रदेशमें सह्याद्रिके निचले भाग में, तीर्थहळ्ळी तालुकाके कुप्पाळि नामक गाँवमें २० दिसम्बर १९०४ को एक अभिजात कुनबी (ओक्कलिग) कुटुम्बमें श्री के. वी. पुट्टप्पाजीका जन्म हुआ। कुवेम्पुजीके पिता श्री वेंकटप्पाजीने एक धनी, सुसंस्कृत तथा उस प्रान्तभरके सम्माननीय परिवारमें जन्म लिया था । कुवेंम्पुजीका शैशव सह्याद्रिके अञ्चलके गिरि-कानन तथा निर्झरिणियोंके किनारे स्थित वृक्षावलियोंपर स्वच्छन्द रूपसे विचरनेवाले शुक-पिक आदि विपिन विहंगमोंके संग प्रकृतिकी कोमल क्रोड़में व्यतीत हुआ । बचपनसे ही उनमें प्रकृतिके प्रति एक विलक्षण आकर्षण एवं, शिशु-सहज कुतूहल जागृत था । अपने बचपनमें ही कुवेम्पुजी घण्टों एकान्तमें बैठकर प्रकृति के रमणीय सौन्दर्यको देख-देखकर आश्चर्यचकित एवं उससे प्रभावित हो उठते थे । मलेनाडुकी कल्लोलमालिनी

नदियाँ, शैलमालाएँ, वनस्थलियाँ, विहंगमोंका कल कूजन, मेघ मण्डित नील गगन, हरी-भरी झाड़ियाँ, चन्द्रिका चर्चित यामिनी, दिवा-रात्रिको लालिमासे संलग्न करनेवाली सन्ध्या, मधुमासमें खिलने वाली कुसुम-कलियाँ, नभोमण्डलपर दमक-दमककर अदृश्य होनेवाली सौदामिनी आदि किसी अज्ञात सत्ताका आभास दे देकर चलती थीं । पर्वत प्रान्तकी अलङ्घ्य गरिमा उनके शिशु मनको आश्चर्य तथा भयसे अभिभूत करती थीं तथा उनके हृदयमें रहस्यमय स्वर-लिपि अंकित करती थी । स्वभावतः एकान्तप्रिय 'कुवेम्पु' पन्तजीकी भाँति जनभीरू थे । आकाशमें जब मेघखण्ड एकत्रित होते तो कवि पुलकाकुल हो नाच उठता था । सूर्योदय, चन्द्रोदय प्रकृतिकी वासन्ती छटा, खगमृगोंका कूजन-विहार कविके किशोर मनपर इन्द्रजालका जाल बुन देते थे । तीर्थ हळ्ळीके मिडिल स्कूलमें पढ़ाई पूर्ण करनेके पश्चात् हाइस्कूलमें पढ़नेके लिए वे मैसूर गए । मैसूर उन दिनों ही नहीं वरन् आज भी समग्र दक्षिणका कला-केन्द्र रहा है । वहाँ उनकी सौन्दर्य-प्रज्ञा और भी विकसित हो उठी । रामकृष्ण आश्रममें उनका विद्यार्थी जीवन व्यतीत हुआ । रामकृष्ण आश्रमके पावन वातावरणने कविके जीवन निर्माणमें अद्‌भुत कार्य किया । 'कुवेम्पु' जी मिशन हाइस्कूलसे निकलकर महाराजा कालेजमें शामिल हुए । उनके विद्यार्थी-जीवनका काल कन्नड़ साहित्यके इतिहासका ही क्यों भारतभरमें एक पर्वकाल था । उन दिनों देशभरमें सांस्कृतिक पुनर्जागरणकी लहरें दौड़ रहीं थी । रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, कवीन्द्र रवीन्द्र आदि महाविभूतियोंने देशके इस छोरसे उस छोर तक क्रान्तिकी अमन्द मन्दाकिनी बहाई । तिलक, महात्मा गाँधी आदि महान् व्यक्तियोंके राजकीय आन्दोलनोंने इसे अपूर्व गति दी । इन सबके पूर्व पाश्चात्य साहित्यके सम्पर्कके कारण देशभरमें सर्वत्र नवीन विचारधाराओं नवीन दृष्टिकोण नवीन जीवनं-प्रणाली आदिकी लहरोंने नवयुवकोंके जीवनकी गति ही बदल दी । इस त्रिवेणीमें कुवेम्पुजीने पूर्णरूपसे अवगाहन किया ।

कन्नड़ साहित्यमें अपनी नवीन विचार धाराके द्वारा युगान्तर उपस्थित कर एक नवीन युग प्रवर्तन करनेका श्रेय स्व. बी. एम. श्री कण्ठैय्याजीको मिलता है । बी. एम. श्री कण्ठैय्याजी कन्नड़के आधुनिक साहित्यमें मन्त्रदाता एवं पुरोहित हैं । हिन्दी साहित्यमें बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदीजीने जो काम किया, वही कन्नड़में करनेका श्रेय स्व. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीको मिलता है । 'कुवेम्पु'

जीको इनके चरणोंमें बैठकर ज्ञान-लाभ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । महाराजा कालेजसे एम. ए. पासकर 'कुवेम्पु' जी १९२६ ई. में मैसूर विश्वविद्यालयमें कन्नड़के अध्यापक पदपर नियुक्त हुए । १९४५ ई. में वे मैसूर विश्वविद्यालयमें कन्नड़के अध्यक्ष बने । करीब बारह वर्षतक उस पदपर रहकर हजारों विद्यार्थियोंके प्रेरणा-प्रदीप बने रहे । वे सन् १९५७ में मैसूर विश्वविद्यालयके उपकुलपति (वाइस चान्सलर) हुए । १९५७ में आपके द्वारा रचित 'रामायण दर्शन' पर भारत सरकारकी साहित्य अकादमीकी ओरसे पुरस्कार प्राप्त हुआ । १९५९ में केन्द्रीय सरकारने 'पद्मश्री' नामक उपाधिसे आपको भूषित किया । १९५८ में मैसूर विश्वविद्यालयने डी. लिट् देकर आपकी मेधाशक्तिका गौरव किया । सरकारी पदपर रहनेपर भी आप स्वतन्त्रता-आन्दोलन, भाषावार प्रान्त-रचना, मातृभाषाको शिक्षणका माध्यम बनाना, कन्नड़को ही प्रान्तीय सरकारकी व्यावहारिक भाषा बनाना आदि आन्दोलनोंके सबल एवं संक्रिय समर्थक रहे हैं ।

29.3 प्रेरणाएँ

कविता करनेकी प्रेरणा आपको अपनी जन्मभूमि मलेनाडुसे मिली । बाल्यकालमें आपके कर्ण कुहरोंमें पड़नेवाले लोकगीत, यक्षगान आदिने आपपर अद्‌भुत प्रभाव डाला है । कन्नड़के अतीव जनप्रिय कवि लक्ष्मीशकी नाद-मधुरी, कल्पना-वैभव आदिका आपपर अक्षुण्ण प्रभाव है । हाइस्कूलमें पढ़ते समय ही आपकी रूझान काव्य सर्जनकी ओर हो गई थी । अँग्रेजीके कीट्स, शैली, वर्ड्सवर्थ आपके प्रिय कवि रहे हैं । आपके जीवनपर मिलटनका प्रभाव तो बहुत अधिक है । हाइस्कूलमें ही अध्ययन करते समय आपने मिलटनके सब ग्रन्थोंका अध्ययन कर लिया था । अँग्रेजीकी स्वच्छन्द धाराके कवियोंके अनुकरणपर 'कुवेम्पु' जी अँग्रेजीमें कविता करने लगे। 'Beginners muse' नामसे आपका एक संग्रह भी छप चुका है । किन्तु आश्चर्यकी बात है कि 'कुवेम्पु' जीको मातृभाषा कन्नड़में काव्य रचना करनेकी प्रेरणा एक विदेशी भाषासे मिली । जे. एच. कसिन्स आपकी कविताओं से प्रभावित हुए और उन्होंने आपको मातृभाषामें काव्य रचना करनेकी प्रेरणा दी । तबसे 'किशोर चन्द्रवाणी' नामक काव्य-नामसे 'कुवेम्पु' जीने सैकडों कविताएँ प्रकाशित

कीं । आपकी प्रथम कृति 'अमलन कथे' एक आख्यानात्मक काव्य है । किन्तु 'कुवेम्पु' जीकी ख्याति उनके 'Pide piper' के अनुवादसे हुई । 'बोम्मन हळिळम किंदर जोगि' (Pide piper) आज भी कर्नाटकके बालक-बालिकाओंके कण्ठ-कण्ठपर प्रतिष्ठित है ।

29.4 रचनाओं का विश्लेषण

कविताके क्षेत्रमें तो आपकी प्रतिभा बहुमुखी है । गीतिकाव्य, खण्डकाव्य, महाकाव्य, आख्यानात्मक काव्य, गीति-नाटय, जीवनी, समालोचना, गद्य-काव्य, कहानी, अपन्यास, बाल-साहित्य - आदि सभी क्षेत्रोंमें आपकी प्रतिभाका सम्यक् प्रस्फुटन हुआ है । अबतक आपने १८ कविता-संग्रह, एक खण्ड काव्य, एक महाकाव्य, सात गीति-नाटय, दो जीवनियाँ, एक बृहत् अपन्यास, दो कहानी-संग्रह, पाँच आलोचनात्मक ग्रन्थ तथा एक गद्य-चित्रका प्रणयन किया है । शेक्सिपयरके 'हैम्लेट' (Hamlet) तथा 'टेम्पेस्ट' (Tempest) का सुन्दर अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। आपने कन्नड़के गीति-नाट्योंमें सरळरगळे (Blank Verse) का सफल प्रयोग किया है ।

नवनवोन्मेषिनी प्रतिभा एवं अप्रमेय कल्पना शक्ति-सम्पन्न होकर 'कुवेम्पु' जी ने तो काव्य-जीवनमें पदार्पण किया । किन्तु उनकी इस अगस्त्य प्रतिभाको सम्यक् मार्गमें सञ्चालित करनेके लिए एक मार्गदर्शक, गुरूकी आवश्यकता थी । सुदैवसे 'कुवेम्पु' जीको स्व. प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजी जैसे महानव्यक्ति गुरूके रूपमें मिले। बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजी आधुनिक कन्नड साहित्यके जन्मदाता हैं। श्रीकण्ठैय्याजीके अगमनके पूर्व कन्नड़ कविता गतानुगतिक कविताओंका एक बनखण्ड थी। सीमित विचारोंकी परिधिमें ही वह परिक्रमा कर रही थी । त्रिपदी, षट्पदी, पिरियक्कर, सांगत्य आदि कन्नड़के छन्द तथा मत्तेभ, शार्दूल विक्रीड़ित, स्त्रग्धरा, मन्दानिल आदि संस्कृतके छन्दोंमें विजड़ित होकर कन्नड़ कविता निष्प्राण हो रही थी । ऐसी परिस्थितिमें प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीका आगमन कन्नड़के लिए वरदान बना । उनके 'इंग्लीष पगीतेगलु' (१९२६) ने तो कन्नड़के नवयुवक कवियोंके समक्ष एक ज्योतिर्मय लोक ही उद्घाटित कर दिया । उसने क्या भाव,

क्या भाषा- सबमें नूतन क्रान्ति ही उपस्थित कर दी । फलतः छन्दके विभिन्न बन्धन छिन्न-भिन्न हो गए । परम्परा जर्जरित श्रृंखलाएँ टूट गई । सर्वत्र एक प्रकारका विद्रोह दिखाई दे रहा था । कन्नड़के नौजवान कवियोंने भी स्थूलके प्रति विद्रोह मचाकर सूक्ष्मका राज्य संस्थापित किया । बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीने उत्साही नवयुवक कवियोंकी एक मण्डली ही तैयार कर दी । 'कुवेम्पु' जी इस मण्डलीके प्रतिनिधि कवि बन गए । उन्हें प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजीसे योग्य मार्गदर्शन तथा योग्य प्रोत्साहन मिला। प्रो. बी. एम. श्रीकण्ठैय्याजी के शिष्योंने मिलकर 'तळिरू', 'किरिया काणिके' आदि जो कविता संकलन प्रकाशित किए उनमें 'कुवेम्पु' जीकी कविताएँ ही अधिक है ।

कन्नड़ काव्यके हिमवात पित्त-जीर्ण-शीर्ण काननमें नवयुगका वसन्त गायन करनेवालोंमें 'कुवेम्पु' जी भी एक हैं । प्रमुख रूपमें उन्होंने इसी काव्य-काननमें अपनी 'कोळलु' ('मुरली' १९३०) की तान छेड़ी । 'कोळलु' में संग्रहीत कविताएँ अपनी सुकुमार भावाभिव्यञ्जना, नाद-माधुरी, नवीन भाव आदिके कारण बहुत ही जनप्रिय बनीं । इनमें 'कुवेम्पु' जीका शिशु कौतूहल है, प्रकृतिका नख शिख चित्रण है । सौन्दर्योल्लास इन कविताओंकी विशेषता है । सौन्दर्य 'कुवेम्पु' जीके लिए ईश्वरसे भिन्न वस्तु नहीं है । कीट्सकी भाँति इन्होंने भी गाया :

चेलुवे देवरू, ओलवेपूजे;
एंबुदे रसजीवनदोजे ।

(सौन्दर्य ही ईश्वर है, प्रेम ही पूजा है, यही रसमय जीवनका मर्म है, क्रम है)

इस प्रकार कवि सौन्दर्य-पुजारी बनकर काव्य-जीवनमें पदार्पण करता है। पन्तजीकी भाँति प्रकृति 'कुवेम्पु' जीको भी मौन निमन्त्रण दे देती है । वही प्रकृति 'कुवेम्पु' जीके लिए काव्य-देवी बनती है :

मलेयनाड बनगळल्लि
मुगुद बालनलेयुतिरलु
अरियदंते हेज्जेयिट्ट
बेन्न हिंदे नीनु बंदे
कब्बदंगते!

हूवुगळलि अडगि नीनु
करदे एन्ननु
तुंगेयल्लि मीयुतिरलु
अलेगळल्लि हुदुगि नीनु
मुत्तुकोट्टे केन्नेगळिगे
चेन्ने कचितेये ।

(हे काव्य कन्यका, मलेनाडुकी अटवियोंमें जब यह मुग्ध बाल भटक रहा था। तब तू अनजानमें नीरव चापमें आकर मेरी पीठके पीछे खड़ी हो गई । कुसुमोंमें छिपे-छिपे तूने मुझे निमन्त्रण दिया । हे सुन्दरी, जब मैं तुंगा नदी में नहा रहा था। तब तूने तरंगोंके रूप में आकर मेरा चुम्बन किया ।)

कविताकी उपादान सामग्री भी उन्होंने प्रकृतिसे ही ली है; उसमें उनका शिशु-सहज कुतूहल लक्षित होता है :

सुग्गिय बनदि हसुरिन मेले
हूवुगळंददि केलवन आय्दे ।
मंजिन मणिगळ मागियलीले
शोभिसलदरिंदि नितनु कोय्दे!
विपिन विहंगमकण्ठव सेरि
नुव्यरगळ गेददेनु बलु होरि ।
कामन बिल्लनु दारव माडि
मोळगनु, मिंचनु, हनिगळ बेडि
हाडुगळनितनु कोदिहेनु!
तुंगेय तेरेगळ चुम्बनदिंद
सिरिमलेनाडिन सिरि मडिलिंद
कवनगळनितनु नेय्दिहेनु!

(मैंने वसन्त काननकी हरीतिमासे, कुसुमोंके सुकुमार सौन्दर्यसे अपने काव्यकी सामग्री चुनी। तुहिन कणोंसे पूर्ण शिशिरकी सुषमा ली। विपिन विहंगमोंके कलकण्ठसे माधुर्य लिया। इन्द्र धनुषके सूत्रसे मैंने इन गीतोंकी माला बनाई है। तुंगा नदीकी

तरंगोंके चुम्बनसे, पर्वत प्रदेशके सुषमामय क्रोड़से सामग्रियाँ लेकर कविताकी माला बनाई है ।)

सूर्योदय, चन्द्रोदय, इन्द्र धनुष, मेघमाला आदिपर रची कविताओंमें यही सौन्दर्योल्लास दर्शित होता है । 'आलसियोंका गीत' आदिमें एक प्रकारका पलायनवादी दृष्टिकोण लक्षित होता है । कवि सौन्दर्य-सुधाका पान करते हुए जीवनकी जटिल एवं कुटिल समस्याओंसे दूर रहना चाहता है :

'ई मरदडियल्लि
गाळिय तांपिनलि
नलियुव हसुनीरलि
जीवव मरेयुव कोलूदि'

(इस तरूके तले मन्द-मन्द पवनकी शीतलतामें, सर्वत्र व्याप्त अखण्ड हरीतिमामें हम आमोद करेंगे मुरलीकी स्वर माधुरी में अपने जीवनको भूल जाएँगे, आत्मविस्मृत होंगे ।)

इन्हीं छायावादी कविताओंमें रहस्य दर्शन, अज्ञातके प्रति कुतूहल आदि भी दर्शित होते हैं । शिशु कवि अर्ध चन्द्रमाको देखकर यह पूछ उठता है ।

देवर पेप्परमेंटेनम्मा
गगनदोळलेयुव चन्दिरनु ?
एष्टे तिंदरू खर्चे आगद
बेळेयुव पेप्परमेंटम्मा !

(भाई, गगनमें विचरनेवाला यह अर्ध चन्द्र क्या ईश्वरकी ऐसी पेपरमेण्ट है जो कितनी ही बार खाई जानेपर भी पिघलती ही नहीं, अपितु और बढ़ती ही है ?)

पन्तजीकी भाँति 'कुवेम्पु' जी भी विहंग बालिकासे मीठे-मीठे गान सिखा देनेकी प्रार्थना करते है :

बा बा ननगू हाडनु कलिसु
बा बा ननगू हारलु कलिसु !
(आओ, मुझे भी गाना सिखा दो न, मुझे भी उड़ना सिखा दो न !)

यह शिशु सहज कौतूहलपूर्ण प्रकृति प्रेम शनैः-शनैः आध्यात्मिक प्रेमके रूपमें परिणत होता है । 'सुन्दरम्' को 'शिवम्' के मन्दिरके रूपमें कवि अनुभव करने लगता है । कोई अज्ञात सत्ता प्रकृतिके कण-कणसे उनको मौन निमन्त्रण देने लगती है । स्वर्ग, उनके पाँवोंमें ही उषाके रूपमें पड़ा रहता है । जहाँ सौन्दर्य है, वहीं स्वर्ग है, इस तथ्यकी अनुभूति होने लगती है :

सग्गद बागिलु अल्लिहुदण्ण !
नुग्गिदरल्ले तेरेयुवुदण्ण !
हक्किम टुव्वियोळवितिदेयण्ण,
हूविन बण्णदोळडगिदेयण्ण ।

(स्वर्गका द्वार कहीं दूर किसी अज्ञात प्रदेशमें है क्या ? जहाँ दौड़ो, वहीं खुला मिलता है । स्वर्ग, विहंगोंके कल-कूजनमें है कुसुमोंके रंगोंमें है स्वर्ग !)

पहले जो सौन्दर्य ऐन्द्रिक उल्लास बना था, कुतूहलकी वस्तु बना था वही आगे आराधनाकी वस्तु बनता है और अन्ततोगत्वा कवि यह अनुभव करने लगता है कि प्रकृतिकी आराधना ही परमकी आराधना है । यह विश्व ही एक दिव्य मन्दिर है । रवि, शशि तथा तारिकाएँ मन्दिरके दीपक हैं, कानन ही विकसित कुसुममाला है, ऊपरका नील गगन ही इस मन्दिरका गोपुर है, सागर तड़ाग तथा निर्झरिणियाँ ही प्रभुके अभिषेचनके जलपात्र हैं, सागर, सरोवरोंका सलिल ही तोय है, दिव्य कुसुमगन्ध ही धूप है, कोकिल आदि विहंगमोंका कल कूजन ही वाद्य है, हृदयका प्रेम ही धर्मशास्त्र है, दिव्य आत्म यज्ञ ही भक्ति है, हृदय पीठ ही ब्रह्मयज्ञशाला है। बृहत् ब्रह्मानुभव की विराट् पूजामें तल्लीन सन्त कविका प्रकृति प्रेम इन प्रकार विराट्की आराधनाके रूपमें परिणत होता है । सर्वत्र व्याप्त प्रकृतिमें प्रभुको खोजनेकी अपेक्षा मन्दिरोंमें, शास्त्र ग्रन्थोंमें खोजना कितनी मूर्खता है ! बाँसकी झाड़ियोंमें मलय मारूत अपनी जन्मभूमिकी कहानियाँ सुनाते हुए भटक रहा है, ऐसे दिव्य सौन्दर्यमें 'गीता' (भगवद्गीता) का ज्ञान भी हमें प्राप्त होता है । मेघोंपर विराजनेवाली लालिमा हमको पण्डितोंके सारे पाण्डित्यका बोध करा रही है, पाण्डित्यका भी अतिक्रमण करनेवाला आनन्दभाव कर रही है तथा यह घोषणा कर रही है कि सौन्दर्य में ही 'शिव' है । हे बन्धु, इस निश्चिन्तताके आनन्दमें डूबने

आ, तिरने आ, पिघलने आ, इधर परमात्माका साक्षात्कार करो न ! आ, बाहर अपने घर छोड़कर इस मोहमयी सन्ध्याके रूपमें प्रकट परमात्माका दर्शन कर !

'कोळलु' कविता संग्रहमें इसी प्रकारकी प्राकृतिक कविताएँ हैं । प्रकृतिमें तादात्म्य स्थापित करनेके साथ अज्ञातकी अनुभूति भी होती रहती है । यही अनुभूति 'कला सुन्दरी' (१९३३ ई.) में संग्रहीत कविताओंमें भी दर्शित है । 'सर्व सम्बन्धी' 'खल्विदं ब्रह्म' वाली उक्ति कविके जीवनमें अनुभूति बनती है । अतः वह तरू-गुल्मोंको, खग-मृगोंको प्रणाम करता है :

तवसिगळरियदे, साधिसि बयसुव
सत्यद नेलेयनु बडकब्बिगनिगे
ओल्मेय दानव माडिदिरि !
हिंदेयु नेच्चिदे, मुंदेयु नेच्चुवे,
मार्गदर्शिगळु नीवेमगे ।
देवन रूपव काणुवे निम्मलि,
देवन वाणिय केळुवे निम्मलि,
निम्मनुभवदलि शिवननुभवविदे,
देवन प्रतिनिधिगळु नीवु !
तरूगळे, सुमगळे, मृगगळे, खगगळे
निमगिदो नमिसुवे भक्तियलि !

(आप लोगोंने मुझ जैसे दीन कविको उस तत्वके मूलका बोध कराया, जिसे ढूँढ़-ढूँढ़कर तपस्वी जन भी थक गए और 'नेति-नेति' कह गए । इंसके पूर्व ही मैंने आपपर श्रद्धा रखी, भविष्यमें भी आपपर मेरी श्रद्धा रहेगी । आप हमारे मार्ग-दर्शन है । मैं आपमें ईश्वर का रूप ही देख रहा हूँ, आप की वाणी में प्रभुकी वाणी ही सुन रहा हूँ । आप के अनुभवों मे शिव का अनुभव है, आप ईश्वर के प्रतिनिधि है अतः हे तरूओ, सुमनो, मृगो, खगो, आपको शत्-शत् बार मेरा नमन हो ।)

'पक्षिकाशि' (१९४६ ई.) में संग्रहीत कविताओंमें इसी भावकी परिणता वस्थाको हम देख सकते हैं । ब्रह्मचैतन्यवादी कवि जीव चैतन्यवादी बनकर सर्वत्र चैतन्य ही चैतन्य देखता है । निरीक्षण एवं परीक्षणोंसे विज्ञान जिस सत्यका निर्णय करता है;

वही कवि भी अपनी अनुभूति द्वारा प्राप्त करता है । रास्तेका एक प्रस्तरखण्ड भी उससे चैतन्यकी जगमगाती ज्योति सी दिखता है :

चेतन मूर्तियु आ कल्लु;
तेगे जडवेंबुदु बरि सुळ्ळु !

(चैतन्यमूर्ति है वह प्रस्तरखण्ड, छोड़ो, 'जड्' नामक वस्तु ही निरी मिथ्या है ।)

'पक्षिकाशि', 'अग्निहंस' (१९४६) आदि कविता-संकलनोंमें 'कुवेम्पु' जीकी रहस्यवादी गीता संग्रहीत है । प्रकृतिके संसर्गसे जो दिव्यानुभूति हुई, जो विराट् दर्शन प्राप्त हुआ वह अनुबवगम्य है । कवि अपनी अनुभूतिको व्यक्त किए बिना भी नहीं रह सकता । इस उभय संकटकी क्या ही मार्मिक व्यंजना है :

हेळिदरे हाळागुवुदो ई अनुभवद सवियु;
हेळदिरे ताळलारनो कवियु !

x x x

ओलुमेयप्पुगेयंते एनलु साधारण;
योगिय समाधि एने अति अपूर्व;
कविय रसरति एनलु कविगोर्वनिगे वेद्य;
मृत्यु मार्धुर्य मेने बदुकिहरिगरिदय्य !

(यदि मैं व्यक्त करूँ तो, मेरे अलौकिक अनुभवका स्वाद मिट जाएगा यदि न बताऊँ तो कवि उस अलौकिक एवं असह्य वेदनाको सह नहीं सकता ।)

x x x

(यदि यह कहूँ कि वह प्रेमके आलिंगनकी भाँति है, तो वह अनुभूति नितान्त साधारण बन जाती है । योगीकी समाधि कहूँ, तो वह अत्यन्त अपूर्व बन जाती है। कविकी रस-रति कहूँ, तो वह केवल कविमात्रके लिए वेद्य है । मृत्युमाधुर्य है ऐसा बताऊँ तो जीवित व्यक्ति उसे समझ नही पाते ।)

कवि 'कुवेम्पु' 'सत्यम्' एवं 'सुन्दरम्' में कोई भेद ही नहीं देख सकता है। संसारकी झंझटोंसे दूर रहकर प्रकृतिकी आराधनामें तल्लीन कवि बाह्य जगतमें आकर देखता है तो दंग रह जाता है । उसे यह अनुभव होने लगता है कि संसारमें सर्वत्र दुःख ही दुःख व्याप्त है ! उसके कारणकी मीमांसा भी करके देखता है कि सौन्दर्य

चक्षुका अभाव ही इसका कारण है । रोज सूर्योदय होता है, चन्द्रोदय होता है, मन्द-मन्द गन्ध का आगमन होता है । कुसुम कोरक खिल पडते हैं मधुमास, विधिहासकी भाँति आता है, खगकुल आनन्दित हो गा रहे हैं, किन्तु इन सबके बीच मानव अशान्तिके कूपमें गिर रहा है :

सोबगना स्वादिसलु समयवे आगिल्ल,
नभ नीलवनु नोडि बेरगापरल्ल !

(सौन्दर्यका आस्वादन करनेके लिए हमें समय नहीं मिल रहा है, हम व्यस्त हो गए हैं । नभ नीलिमाको देख पुलकित होनेवाला कोई नहीं है ।)

किन्तु इसी बीच कविकी कल्पना झूठी लगती है । स्वप्नद्रष्टा कविका स्वप्नसौध वास्तविकताके आघातसे चकनाचूर हो जाता है । उसके आदर्श एवं मूल्य विश्रृंखल हो जाते हैं । 'मुरली' की तान छेड़नेवाला, 'कलासुन्दरी' के कोमल क्रोड़में क्रीड़ा करनेवाला, सृष्टि सौन्दर्यको देखकर मयूर बन नाच उठनेवाला कवि पाञ्चजन्यपाणि बनता है । उसकी बाँसुरी फटकर भेरी बनती है, उसकी लेखनी खड्ग बनती है :

कब्बिगन लेखनियु
कठारियागुतिरूवुदु!
इंचरद कोळलु बिरिदु
कठोर भेरियागुतिदे!

(कविकी लेखनी कुठार बन रही है, माधुर्य-वर्षिणी मुरली फटकर भेरी बन रही है।)

जिस हाथने मुरली धरी थी वही आज पाञ्चजन्य फूँकने चला है । दीन, दलितोंकी, पतितोंकी परिस्थितिको देख कविकी पीयूषवर्षिणी वाणी कालकूटकी वर्षा करने लगती है । वह बड़े-बड़े साम्राज्योंको इस प्रलय प्रभञ्जनमें मिट्टीमें लोटते देखता है । कवि मूक श्रमजीवियोंकी वाणी बनकर मेघ-गर्जना करता है। उसकी वाणीमें निर्जीव जड़में चैतन्यका स्फुलिंग भरनेकी शक्तिका समावेश हो जाता है ।

श्रावण मासके सन्ध्या समीरणसे कवि जीवनकी सब जीर्ण-शीर्ण विगलित परम्पराओंका ही नाश कर नवजीवन बरसानेकी प्रार्थना करता है :

कडलौडलिन बडबाग्निय रौद्रव
नम्मोडलालि केरळिसिबार !
सुळिगाळिगे भोगरिव समुद्रव
नम्मेदेगळलुरूळिसि बार !
मुंगार्मोळगनु गुडुगनुमिंचनु
नम्मेदेगूडुत नी बार !
विप्लव मूर्तिय कळ्ळोळसंचनु
तूत्तूरियूदुत नी बार !
श्रावण सन्ध्यासमय समीर !
स्वागत, बारा ! धीरर धीर !

(सागरके गर्भमें स्थित बड़बाग्निके रुद्र रूपको हमारे हृदयोंमें भी प्रेरित करते हुए आओ न ! प्रभञ्जनाक्रान्त प्रक्षुब्ध सागरको ही हमारे हृदयोंमें उँड़ेलते हुए आओ। वर्षा ऋतुके घनगर्जनको, आकाशकी घुमड़को, वज्र रवको हमारे हृदयोंमें पिलाते आना। विप्लवमूर्तिके षडयन्त्रके द्वारा, तूर्यघोष करते हुए आओ न । हे श्रावण के सन्ध्या-समीर तुम्हारा स्वागत है !

जीवनकी विषमताके कारण सर्वत्र क्रान्तिका रक्त प्रवाह आ रहा है । उसकी भीषणता देखिए :

बरूतलिदे ! बरूतलिदे !
विप्लवद रक्तध्वनि,
नोडु, हरिदु बरूतिदे !
बेनेवसिरिनिंद चिम्मि
दास्य शिलेयनोडेदु होम्मि,
श्रीमंतर कोळक बिच्चि
हळतनेल्ल कोच्चि कोच्चि,
नोडु नुग्गि बरूतिदे !
मरणदंते मौनवागि
विलयदंते रूद्रवागि
गुडुगनुळिद सिडिलिनंते

होळेव मिंचिनुदाधियते
काळि तेरेद जिह्वेयंते
तरूणरक्तदरूण नदि
विप्लवद रक्तधुनि
बरूतलिदे ! बरूतलिदे !
नोडु ! नोडु ! बरूतिदे !

(वह विप्लवका महापूर (बाढ़) आ रहा है । उमड़-उमड़कर बहता आ रहा है वेदनाके हृदयसे उद्‌भूत हो आ रहा है, दास्यशिलाको चकनाचूर कर आ रहा है, वह बाढ़ धनवानोंकी सड़ी-गली वस्तुओंको उद्‌घाटित कर, उनकी पोल खोलते आ रही है, पुरानी सड़ी-गली वस्तुवोंको नष्ट भ्रष्ट करते हुए, दौड़ी आ रही है । मरणकी भाँति मौन हो वह आ रही है, विलयकी भाँति रौद्र बनी आ रही है, शब्दशून्य वज्रपातकी भाँति, आँखोंको चौंधियानेवाली विद्युत की उदधिकी भाँति, कालीकी लोल-लोल जिह्वाकी तरह तरूण रक्तकी अरूण नदी विप्लवका रक्त-प्रवाह बनी आ रही है । आ रही है, देखो न !)

'विप्लव मूर्ति' 'काली आ रही है' आदि कविताओं में भी इसी प्रलयंकारी आगमन का भीषण वर्णन है । इन सब को देखकर कवि कैसे कल्पना की उडान में उडते एकंत संगीत में निमग्न रह सकता है । 'वसंत' वनको छोडकर जीवन की कठोर भूमिपर विचरने लगती है । युग चेतनाकी पुकार अनसुनी नहीं कर पाता है, वह भी विप्लवमूर्तिका सखा बनता है, विप्लव मूर्ति ही बनकर विप्लव गायन करने लगता है :

विप्लव मूर्तिय सखनागिहनै,
कविगरसु गिरसुगळ ऋणविल्ल !
अवनग्निमुखि !
प्रलयशिखि !

(आज वह (कवि) विप्लव मूर्तिका सखा बना है । कवि राजा महाराजाओंके ऋणपर नहीं जीता, वह अग्निमुखी बना है, प्रलय शिखी बना है । उस अग्निमुखीकी वाणीमें नवीन जीवनका ज्योतिर्मय सन्देश है ।)

'होसबाळिन गीते' (नवजीवनका गीत) में युग-वाणीकी कितनी मार्मिक व्यंजना है !

सर्वरिगे समबाळु ! सर्वरिगे समपालु !
एवं नवयुगवाणि घोषिसिदे केळि !

x x x

इन्द्रसिंहासनके बंदिहुदु कोनेगाल;
कळचि बीळुवुदिंदु नंदनद वेलि !
देवतेगळ श्लीलमोदक्के बदलागि
गोचरिपुदल्लि मर्त्यर कृषिय केलि !
द्रव्यानुकूलतेय जातिया नीतिया
पक्षपातवनेल्ल कोच्चुवुदु बुद्धि;
मत्तोंदु नाकवने नेय्युवरू लोकदलि
देवरन्यायबनु मानवरे तिद्दि !

('सबका समान जीवन, सबका सम भाग!' इस प्रकारकी नवयुग वाणी घोषित हो रही है, सुनिए ।)

x x x

(इन्द्र-सिंहासनका अवसान-समय भी समीप आ गया है । नन्दन काननकी मेंड़ टूटकार गिर रही है । उधर देवताओंके अश्लील आमोदके बदले मर्त्योंकी कृषिकेलि गोचर होती है । आजकी बुद्धि द्रव्यानुकूलता, जाति, नीति सबके पक्षपातका नाश कर रही है । देवताओंके द्वारा किए गए अन्यायको मिटाकर मानव समाज ही आज एक नूतन स्वर्गकी सृष्टि करेगा ।)

'कल्कि ' कुवेम्पु जी की सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी कविता है, स्वप्न में 'कल्कि' के आगमनको देखकर कविकी नींद उचट जाती है, उसका स्वप्न टूट जाता है । किन्तु कल्किका भीषण चित्र वर्तमान दारिद्रय एवं अन्यायकी विभीषिकाका चित्र है, भविष्यमें होनेवाली क्रान्तिका चित्र है ।

इस प्रकार युग-चेतनाको पहिचानकर कविकी लेखनी भी कठोर करवाल बनी। 'कुवेम्पुजी' ने कन्नड़की प्रगतिवादी कविताको सचमुच आत्मदान दिया है ।

प्रत्येक कवि युग-प्रसूत है । युग विशेषकी वाणीको, अवसाद एवं विषादको वह अनसुना नहीं कर सकता । राष्ट्रीयताका प्रभञ्जन उसे भी झकझोरता है और कविकी वाणी राष्ट्रीय जागरणमें तूर्या बनती है । कवि घोषणा करता है कि राष्ट्रदेवीके समक्ष अन्य देवता हैं ही नहीं, उठो, उसका उद्धार करने आओ :

नूरू देवरनेल्ल नूकाचे दूर
भारतांबेये देवि नमगिंदु पूजिसुव वार !

(सैकड़ों देवताओंको आज बाहर ढकेल दो, आज भारत जननी ही हमारी आराध्य देवी है, आओ हम उसकी पूजा करें ।)

'पाञ्जजन्य' नामक कवितामें कवि भारतीयोंको स्वातन्त्र्य संग्राममें कूदनेका आमन्त्रण देते हुए कहता है :

भरतखंडदहितवे
नन्न हित एंदु,
भरत मातेय मतवे
नन्न मत एंदु,
भारतांबेय मुक्ति
मुक्ति ननगेंदु,
भारतांबेय मुक्ति
मुक्ति ननगेंदु,
नुग्गु मुंदके धीर ।

(भरत खण्डका हित ही मेरा हित है, भारतमाताका मत ही मेरा मत है । भारतमाताकी मुक्ति ही, मेरी मुक्ति है - इस प्रकार समझकर हे वीर, आगे बढ़ो ।)

हुतात्माओंको श्रद्धञ्जलि देते हुए कवि उनको रक्त तर्पण देनेके लिए जनताको निमन्त्रणम देता है ।

हुतात्माओंको रक्त तर्पण देकर अपना ऋण चुकाइए । आज आमोदप्रमोदका दिन नहीं है । आज कारागारमें ही क्यों न जाना पड़े, मृत्यु ही क्यों न आए, हम हृदयके उष्ण रक्तका तर्पण देकर हुतात्माओंकी आशाको पूरा करेंगे ।

'कुवेम्पु' जीके राष्ट्रीय गीतोंमें एक ओर भारतकी गत गरिमाका चित्र है तो दूसरी ओर वर्तमान क्लैब्यके प्रति विक्षोभ भी ।

युगवाणी एवं युगचेतनाको पहचानकर कविने तो प्रगति गीत रचे, किन्तु यह कविकी महत्वपूर्ण कविताएँ नहीं हैं । कवि मार्क्सवादकी हिंसक मनोवृत्तिके प्रति अनास्था व्यक्त करता है । मार्क्सवादी दार्शनिक नीरसता से कवि परितोष नहीं पा सकता । कवि अनुभव करता है कि मार्क्सवाद भारतीय संस्कृति केलिए भारतीय वायुमंडल केलिए अनुपयोगी है । मार्क्सवाद पर कवि ने 'कोयल' और 'सोवियत-रूस' नामक कवितामें सुन्दर व्यंग्य किया है । गान्धीजीके सर्वोदयके प्रति कविकी हार्दिक श्रद्धा है । वह मानव-मानवको प्रेमकी समान भूमिपर विचरते देखना चाहता है । मत-मतान्तरोंके कारण विश्वमें अनेक युद्ध-क्रान्ति आदि हुई हैं ।

जीव-चैतन्यवादी बनकर कवि मानव देवकी पूजा करनेकी प्रार्थना करता है । 'मोदल देवस ई हरूमुदुकि' (यह वृद्धा प्रथम देवता है) वाली कवितामें मानवतावादकी सुन्दर अभिव्यक्ति है :

मोदलने देवरूई हण्मुदुकि
नीडज्जिगे भिक्षे !
बाळीकेगे साकागिदे बदुकि;
मोरलज्जिय मनकिंपैतरलि ।

(यह वृद्धा प्रथम देवता है, इस नानीको भिक्षा दो । वह जीवनसे बाजज आ गई है । जीवित रहना ही उसके लिए एक दण्ड बन गया है । ऊपरके ईश्वरकी पूजा रहने दो, पहले इस बूढ़ी नानीको सन्तुष्ट करो ।)

कवि विश्वकी आधुनिक गति-विधियोंकी ओर जब दृष्टिपात करता है तो देखता है कि ज्ञान-विज्ञानकी अद्‌भुत प्रगति तो हो रही है, किन्तु मानव-मस्तिष्कका दास बना, अपने हृदयको खो रहा है । 'शतमान सन्ध्ये' नामक कवितामें इसकी यथार्थ वेदनाकी अभिव्यक्ति है :

नोण मीसेय हुळु हेज्जेय
एणिसुव बिज्जेय बल्ल;

तन्नात्मव तानरियुव
साधनेयोंदनुओल्ल!
तिळिदू तिळिद्तिळिदू
कडेगेनू गोत्तिल्ल!

(मानव विज्ञानके क्षेत्रमें आज आश्चर्यजनक प्रगति कर रहा है । उसने मक्खियोंके पैरोंके बालोंको, कीड़ोंकी पदचापको गिनना सीखा है, वह कृमि-कीटोंके पदचापको गिन सकता है । कितनी विडम्बना है कि वह अपनी आत्माको नहीं जनता है । अन्वेषण! केवल अन्वेषण! बस, शान्तिसे साँस लेनेके लिए भी उसे फुरसत नहीं मिल रही है । जान जानकर भी अन्तमें वह अज्ञानी ही सिद्ध हो रहा है ।)

'सभ्यता देवते' नामक कवितामें गाँधीवादीकी महिमाका वर्णन करते हुए कवि बताता है कि एक समय था, जब कि मानव वैचित्र्यको ही ईश्वर मानकर आराधना करता था, मत्स्य, कूर्म आदिकी पूजा कर रहा था, राजदर्पमें, अधिकारमें, क्रूरतामें, शक्ति, बल, युक्ति, एश्वर्य तथा अहंकार में देवत्वको देखता था । किन्तु आज वह समय नहीं रहा है । मानवके अभ्युदय तथा श्रेयके लिए अपने जीवनका ही होम करनेवाले, त्याग करनेवाले ईसाई, बुद्ध आदि मनुज तनुजोंको ही देवता माननका समय आ गया है । ऐसी ऋजु दृष्टि प्राप्त करनेके लिए मानव जातिको तीन युगोंकी प्रतीक्षा करनी पड़ी और कलियुगको आना पड़ा । अतः धन्य कलियुग तुझे शत-शत प्रणाम हो!

संसारमें कितने साधु-सन्त आए, महात्मा आए पीर-पैगम्बर आए किन्तु उनका प्रभाव नहीं जैसा है । संसार अशान्ति-कूप ही बना है । राष्ट्र-प्रेम विश्वप्रेमके सामने क्षुद्र है, संकीर्ण है । और वही आजकी विश्वशान्तिके मार्गमें रोड़ा बनकर अटक रहा है । अतः कवि अपनी चेतनासे प्रार्थना करता है कि वह प्रान्तीयता, राष्ट्रीयता विभिन्न मत-मतान्तरोंकी परिधियोंको लेकरके बन्धनोंको पारकर निर्दिगन्त बने अनिकेतन बने, मानवताके अपार सागरमें अपार हो कर रहे ।

ओ नन्न चेतन,
आगु नी अनिकेतन!
नुरू मतद होट्ट तूरि,

एल्ल तत्वदेल्ले मीरि,
निर्दिगतवागि एरि
ओ नन्न चेतन,
आगु नी अनिकेतन !

(हे मेरे चेतन, तुम अनिकेतन बनो, सैकड़ों मत-मतान्तरोंके धर्मोंकी फटकनियोंको धूलमें उड़ाकर, सभी तत्वोंकी सीमाओंको अतिक्रान्त कर, निर्दिगन्त बने ऊर्ध्व भूमिपर विचरो ! हे मेरे चेतन, तुम अनिकेतन बनो !!)

'कुवेम्पु' जीका वर्तमान कवि आत्मचेतना एवं युगचेतनाकी सोपान श्रेणियोंको पारकर ऊर्ध्व-चेतना पर आरोहण कर बैठा है । उनकी योग-महिमासे अखण्ड प्रकृति ही एक विराट काव्य बनी विराज रही है -

काननगळे गानमागि
तान तान मूडिवे !
तेरे तेरे मले होळे तोते
मूडुतिहवु रागदि !
पर्वतगळे पदगळंते
गानयोडु गेयमागि
नुग्गुतिहवु वेगदि ।
नाळ नाळ नाळदल्लि
बिंदु बिंदु नेत्तरल्लि
कंदराद्रि विपिन पंक्ति
स्पंदि सुतिवे योगदि !

(अखिल कानन ही गान बने तान छेड़ रहे हैं । तरंग, तुंग पर्वत, नदी, निर्झरिणी आदि रागसे पुलकित हो रहे हैं । पर्वत ही पद बने गा-गाकर गेय बने आगे प्रचण्ड वेगसे घुस रहे हैं । नाल नालमें रक्तकी प्रत्येक बूँद, कंदरा, अद्रि, विपिन पंक्ति आदि योगमें स्पन्दित हो रहे हैं ।)

'जेनागुवा', 'इक्षुगंगोत्रि' आदि कविता-संकलनोंमें उनकी नवीन दार्शनिक कविताएँ हैं। 'पक्षी', 'ऋत चिन्मयी जगन्मातेगं' आदि उनकी चैतन्यवादी कविताएँ हैं। 'कृत्तिके', 'अग्निहंस' आदि कविता-संकलनोंमें आध्यात्मिक गीत हैं ।

अब हम 'कुवेम्पु' जीकी महान् कृति 'रामायण दर्शन' महाकाव्यका थोड़ा परिचय देनेका प्रयास करेंगे । 'रामायण दर्शन' कन्नड़ काव्यके कीर्ति मन्दिरकी स्वर्णपताका है । बीसवीं शताब्दीके भारतीय साहित्यकी महान कृतियोंमें एक है । आदि कवि वाल्मीकिके पश्चात् भारतकी विभिन्न भाषाओंमें असंख्य रामायणोंकी रचना हुई है । किन्तु 'कुवेम्पु' जीकी रामायण एक नूतन सृष्टि है; वह केवल राम-रावणकी कथा नहीं है :

बहिर्घटनेयं प्रतिकृतिसुवा लौकिक
चरित्रेयलितदु, अलौकिक नित्य सत्यंगळं
प्रतिभिसुव सत्यस्य सत्य कथनं कणा ।

(बहिर्घटनाओंकी प्रतिकृति लौकिक इतिहास नहीं है । यह रामायण, बल्कि अलौकिक नित्य सत्योंको प्रतिमा विधानमें व्यक्त करेवाला 'सत्यस्यसत्यकथनम्' है।)

रामायणके अन्तमें भी कवि कहता है :
इतिहासमलतु; बरिकथेमलतु; कथे तां
निमित्त मात्रं, आत्मके शरीरदोलंते ।
मेटवेत्तुरिल्लि रामन कथेय पंजरंदि
राम रूपद परात्पर पुरूषोत्तमन
लोकलीलादर्शन ।

(यह इतिहास नहीं है, निरी कथा नहीं है, कथा तो निमित्त मात्र है । आत्माके लिए जिस प्रकार शरीर है उसी प्रकार रामकथा रूपी कंकालमें रामस्वरूपी परात्पर पुरूषोत्तमका लीला दर्शन ही काव्य बना है ।)

'रामायण दर्शन' अन्नमय कोशसे आनन्दमय कोशतककी जीवकी पारिणामिक यात्राका रम्य एवं उज्वल इतिहास है । अयोध्या सम्पुट, किष्किन्धा सम्पुट, लंका सम्पुट एवं श्री सम्पुट-इस प्रकार यह काव्य चार भागोंमें बाँटा गया है । मनोमय

प्रतिमा अयोध्यासे परित्यक्त श्रीरामचन्द्रका आगमन प्राणमयकी प्रतिमा किष्किन्धामें होता है, राम उधर ऊर्ध्व गमनासक्त सुग्रीवकी सहायता करते हैं उस सत् शक्तिका विरोधी बालि रूपी तम शक्तिका नाश करता है । सुप्त चित्तके गुप्त तिमिर अन्नमय भूमिका रूपी रावणकी कारामें बद्ध सीता रूपी चैत्यसे प्रज्ञाको लाता है । उस चैत्यसम्प्रज्ञाको पाकर उधर ही नहीं रह जाना चाहिए; उसके ज्ञानसें उस पार और इस पारका सेतु निर्माण करना है । तब श्री अरविन्दके प्रति मानसकी प्रतिष्ठापना होगी इस प्रकार रामचन्द्र उस पार तथा इस पारके बीच सेतु निर्माण करनेवाला अतिमानव (superman)है । अतः अयोध्या सम्पुट मनोमय भूमिकाका प्रतीक है, किष्किन्धा सम्पुट प्राणमय भूमिकाका प्रतीक है । श्री सम्पुट विज्ञानमय तथा आनन्दमय भूमिकाओंका प्रतीक है :

मनोमयं प्राणमयमन्नमयदा प्रतिमेगळ्
मानवते वारनरते दैत्यतेगळं दांटुवोल्
संपुटमयोदयेयं किष्किन्धेयं लंकेयं
दांटि, विज्ञान दृष्टिय पूर्णरसकेर्ववोल्

(मनोमय, प्राणमय, अन्नमयकी प्रतिमाएँ मानवता-पशुता तथा असुरताको जिस प्रकार अतिक्रांत करती है, उसी प्रकार अयोध्या किष्किन्धा तथा लंका सम्पुटोंको पार कर विज्ञान दृष्टिकी पूर्ण रस प्रज्ञा पर आरूढ़ होता है । इस प्रकार रामायण अन्नमय पुण्यके आनन्दमय पुरूष बननेका इतिहास है । अतः 'कुवेम्पु' जीका कथन है कि रामायण रामसे भी प्राचीन है, महान है ।)

चरित्र-चित्रणमें भी कुवेम्पुजीने नवीन उद्भावनाएँ की हैं । 'काव्येर अनादर' का निराकरण किया है । उनकी उर्मिला गुप्तजीकी उर्मिलाकी भाँति तपस्विनी बनी है, उसके वेदना-निवेदनोंसे सारा काव्य मुखरित है । उसकी मौन तपस्यासे समग्र काव्य पूत बना है । उसका सन्देश तन्न तान् इल्ल गैवुदे एल्ल साधनेगे कोनेयगुरि' (अपने आपको 'नाहीं' में परिवर्तित करना ही सब प्रकारकी साधनाओंकी परम परिणति है ।) भारतीय संस्कृतिका सार मर्म है । कैकेयीका चरित्र भी पाठकोंकी अजस्त्र सहानुभूति का पात्र बना है । मन्थरा 'कुवेम्पु' जीकी एक नूतन सृष्टि है । वह समग्र रामायणकी केन्द्र - बिंदु है, रामायणका कारण नहीं करण है । साकेत मात्रमें सीमित रह जानेवाली महाशक्तिको बहिर्जगतमें ले जानेवाली प्रेरक शक्ति है।

अतः उससे जो लोकसेवा हुई वह अद्‌भुत है । कुवेम्पुजीका रावण भारतीय साहित्यके लिए ही एक नूतन देन है । राम और रावण अंक ही सत्यके रूपांतर मात्र है। एक आनंदमय भूमिका में रहनेवाला जीव है तो दूसरा मनोमयक जीव है। राम एक ओर कहता है -

नाने अवनल्लदिरे आदहाग्रीवंगदेन्
सीतेयन्नोलिवुदुं, भेणक्कळनुखुदुं,
केळ्, मोर्गे

(मैं ही रावण हूँ, नहीं तो सीताके प्रति मोह तथा उसका अपहरण उससे कैसे सम्भव हो सकता था ? राम अपने ब्रह्मास्त्रके रूपमें रावणके हृदयमें प्राणरूपमें प्रवेश करते हैं । रामके प्राणको पाकर रावण 'सेरे सिल्किदनो वैरि तिरूगिसु वरूथमें' (वैरी बन्दी बन गया है, रथको मोड़ो) कहकर लंका लौटता है। उस बाणको निकालनेके पश्चात् रावण मर जाता है तो उधर रणभूमिमें श्रीरामचन्द्रकी स्थिति देखिए :

कूडे, कपिसमिति घे घे एनुते कुविदाडे,
मैदोर्दुदत्तला रघुकुलोत्तमचित्त
पर्वतद चूडमं मुत्तिर्द कत्तलेय
कडलिनंचिनलि चैतन्य चन्द्रोदयं ।।

उधर कपि समूह रणभूमिमें 'उघे' 'उघे' कहकर चिल्ला रहे हैं । रामचन्द्रके चित्तपर्वतपर एक प्रकारका अन्धकार जो छा गया था, उसके तीरपर चैतन्य चन्द्रोदय होता है । रावणके मरनेपर तमस निकल गया, शुद्ध सत्व मात्र रह गया । मायाकी प्रवञ्चनामें आ जानेवाली सीता अपने माया निरसनके कारणकर्ता-रावणके प्रति कृतज्ञता समर्पित करती है । ..... 'नानु मा मयन मगळाण मंगे । कृतज्ञे दल !' में भी उस मयनन्दनावल्लभके प्रति कृतज्ञा हूँ । रावणके द्वारा अपहृत होकर कष्ट संकटोंका अनुभव किए बिना उसका माया निरसन नहीं हो सकता था । काञ्चनमृगपर उसका मन मुग्ध हो गया । परन्तु इस मायाको निकालनेमें उसे अनन्त कष्ट सहने पड़ते हैं । ('कुवेम्पु' जीके रावण और कुम्भकर्ण ही सीताके गर्भमें लव-कुशके रूपमें जन्म लेते हैं । इस प्रकार दुर्गाके वरसे रावण सीताको माताके रूपमें प्राप्त करता है।) अवरोहण क्रमसे आनन्दमयसे अन्नमय कोशोंमें विचरनेवाला भी वही परम

तत्व है जो आरोहण क्रमसे स्वस्थान जाकर आनन्दमें लीन हो जाता है । हनुमान एक अतिमानवके रूपमें भू लोक एवं स्वर्गलोकको मिलानेवाली अद्‌भुत एवं शाश्वत शक्तिके रूपमें चित्रित है । तुलसीदासकी भाँति 'कुवेम्पु' जीने भी विवाहके पूर्व सीता-रामको प्रथम मिलनका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है । 'कुवेम्पु' जीने रामायणके लिए के अपना छन्द 'महा छन्दस्' निर्मित किया है । बीस मात्राओंवाले उस अमित्राक्षर छन्दमें अद्‌भुत गति है, मिल्टनका-सा ओज है । महोपमा (Homeric similes) एवं सम्मूर्तनोंसे (imageries) यह काव्य ओतप्रोत है । संस्कृत भूमिष्ट अतः कोमल पदावलीके कारण उनकी शैलीमें एक प्रकारका गाम्भीर्य है । 'कुवेम्पु' जीकी रामायणने कन्नड़-काव्य-वाहिनीको सागरकी-सी विशालता एवं गाम्भीर्य दिया है; आत्मदान दिया है । कुवेम्पुजीकी कविताओंकी विशेषता है, उनका अदम्य उत्साह । उनके काव्यमें उत्साहकी बाँसुरी बजती है, कल्पनाका मयूर नाचता है । 'कुवेम्पु' जी प्रधानतः गीतकार हैं । वर्तमान कन्नड काव्य शैलीके दो मार्ग है : -एक सरल प्रसादपूर्ण व कन्नडके अपने शब्दोंका प्रयोग जिसे हम 'देशी' कह सकते है; दूसरा संस्कृत शब्द भूयिष्टता, गाम्भीर्य एवं नादमाधुर्यसे मण्डित मार्ग । 'कुवेम्पु' जी इस द्वितीय मार्गके अद्वितीय साधक तथा प्रवर्तक हैं । ओज एवं गति, भाव-गाम्भीर्य अर्थ-भव्यता एवं भाषाकी प्रौढ़ता आदि उनकी शैलीकी विशेषताएँ हैं ।

'कुवेम्पु' जी मूलतः प्रकृतिके कवि है; उनकी काव्य चेतनाके निर्माणमें प्रकृतिका विशेष प्रभाव है । किन्तु प्रकृतिने उन्हें पलायनवादी नहीं बनाया, उसकी विकास-परम्पराने कविको गम्भीर चिन्तक बनाया है । उनके चिन्तनको जीवशास्त्र, मनोविज्ञान एवं पदार्थ विज्ञानके तथ्योंने सम्बल दिया है । अतः 'कुवेम्पु' जी समन्वयके विराट् गायक हैं । उनके काव्यमें परा एवं अपरा विद्याका ज्ञान एवं विज्ञानका श्रेय एवं प्रेयका आदर्श एवं यथार्थका मधुर समन्वय है । बुद्धि एवं हृदयके समन्वयके बारेमें तो उनका स्पष्ट कथन है - 'बुद्धि-भावोंका विद्युदालिंगन ही प्रतिभा है ।' कुवेम्पुजी विकासवादी कवि है। जिस प्रकार एकानुजीवी अमीबा विकसित होते-होते मानवके रूपमें परिणत हुआ है, उसी प्रकार मानवको भी विकासपथमें अग्रसर होना है किन्तु यह बहिर्विकास नहीं है, केवल बहिर्विकास ध्वंसात्मक है । सब प्रकारके बहिर्विकासोंको अन्तर्विकासमें परिणत होना है । इस अन्तर्विकासके लिए मानवमें

तीव्र अभीप्साका रहना नितान्त वांछनीय है । इसी अभीप्साके कारण भंगकीट न्यायकी भाँति मानव ही देव बन सकता है :-

हारैसु हारैसु हारैसु, जीव
हारैसु नीनागुवन्नेगं देव !
हारैसि हारैसि हारैसि
अन्न तानादुदै प्राण ;
हारैसि हारैसि हारैसि
हारिदुदो नीरधिय मौन !
हारैसि हारैसि हारैसि
प्राणगुदिसिवु मनोज्ञान ;
हारैसि हारैसि हारैसि
सिद्धियात्मात्मविज्ञान !

(हे जीव ! तुम अभीप्सा करो, कामना करो जबतक तुम देव न बनो तब तक अभीप्सा करते रहो । अभीप्सा करते-करते अन्न प्राण बना, अभीप्सा करते-करते ही सागरकी मछली उड़ने लगी । तैरनेवाली मछली उड़नेवाला पक्षी बन गयी इसी अभीप्साके कारण । अभीप्सा करते-करते प्राणमें मनोज्ञानका उदय हुआ । इसी प्रकारकी तीव्र अभीप्साके कारण आत्मविज्ञानकी सिद्धि हुई । अतः तुममें उस प्रकारकी उत्कट अभीप्सा रहनी है ।)

'कुवेम्पु' जी चैतन्यवादी है; वे जड़ एवं चेतनमें किसी प्रकारका भेद नही मानते है । जड़की निरन्तर अभीप्साके कारण ही वह चेतन बन रहा है :-

हारैसि हारैसि हारैसि
हसुरनुसुर्दुवो कल्लुमण्णु;
हारैसि हारैसि हारैसि
कुरूडु जडकुदिसितय् कण्णु !
हारैसि हारैसि हारैसि
चित् उरूळ्दुदु सुत्ति सुरूळि;
हारैसि हारैसि हारैसि
मृत् अरळ्वुदो अत्ते मरळि !

(अभीप्सा करते-करते प्रस्तर खण्डोंमें मृत्पिण्डोंमें शस्योंका उदय हुआ । इसी सतत अभीप्साके कारण ही अन्ध जड़में चैतन्यका नेत्र फूट पड़ा । इसी अभीप्सामें रत रहनेके कारण जड़ जगतमें चैतन्यका उदय हुआ । इसी निरन्तर अभीप्साके कारण ही हमारी यह मृण्मयी वसुन्धरा देवभूमि बनेगी ।)

इसी विकास परम्पराके कारण कुवेम्पुजीका विचार है कि इस जगत् में एक प्रकारकी पूर्ण दृष्टि स्थापित होगी । उन्होंने एक जगह बताया है - "जागतिक जीवन अनेकतासे एकताकी ओर चल रहा है, अनेकताका नाश करनेवाली एकताकी ओर नहीं समन्वयात्मक एकताकी ओर। तत्परिणाम अथवा तत्कारण एक पूर्ण दृष्टि सिद्ध हो रही है । इस पूर्ण दृष्टि एवं समन्वय बुद्धिके परिणामस्वरूप एक प्रकारकी सर्व समानताका समता भाव उदित हो रहा है । राजकीय एवं आर्थिक रंगोंमें वह वर्णपूर्ण बने कलह एवं सन्धियोंसे रञ्जित हो प्रकट हो रहा है । किन्तु सामाजिक एवं धार्मिक तथा साहित्यिक कलारंगोंमें वह अपने निगूढ़ कार्यमें रत है ।

मत, धर्म, एवं देवता आदिके बारेमें भी संकीर्ण भावनाएँ विशाल भावनाओंमें परिणत हो रही है । उग्र राष्ट्रीयताकी स्वार्थता एवं स्वप्रतिष्ठा अन्तरराष्ट्रीय आदान-प्रदानकी मैत्रीकी शरणमें गए बिना शान्ति एवं क्षेम किसी भी देशको चाहे वह कितना भी बड़ा हो, बलिष्ठ हो, श्रीमान् हो - प्राप्त नहीं हो सकते । इस प्रकारकी मनोवृत्ति राजकार्योंमें और समयसे अधिक आज उदित हो रही है । सम्पत्तिके विनियोगमें सबका समभाग, सबके समजीवनवाले मूलतत्वका अनुष्ठान दिन दूनी रात चौगुनी गतिसे बढ़ रहा है । सर्वोदय सिद्धान्त संस्थापित हो रहा है ।

इन सबकी ओर लक्ष्यकर हम यह निस्सन्देह बता सकते हैं कि समन्वय, सर्वोदय एवं पूर्ण दृष्टि - ये तीन महान् तत्व संसारके भविष्य जीवनके मूल मन्त्र बनेंगे । ये मूलमन्त्र ही भावी साहित्यके मार्गदर्शक बनेंगे ।'

'कुवेम्पु' जीकी सूक्ष्म चेतना मार्क्सवादी आदर्शों और सर्वथा निरपेक्ष भौतिक यथार्तोंमें ही लिप्त रहकर परितोष नहीं पा सकता । यहाँ तक कि उनको उससे विरक्ति हो गई । उसी तत्वको भारतीय भावभूमिमें प्रतिष्ठापित करनेवाला तत्व है सर्वोदय । अतः सर्वोदय, जिसमें हिंसाके लिए स्थान नहीं है, जिसमें मानवीय

उच्च मूल्योंके प्रति आस्था है, 'कुवेम्पु' प्रिय विषय बना है, सर्वोदयरवि सन्त विनोबाके सत्संगोंको प्राप्त कर 'कुवेम्पु' जी पुनीत हुए हैं ।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि 'कुवेम्पु' जीको भौतिक वस्तुओंसे तिरस्कार है, चिढ़ है । उनकी आध्यात्मिकता साम्प्रदायिक नहीं है, मनोवैज्ञानिक है । उसमें आध्यात्मिक मानववाद, जिसे हम आध्यात्मिक विकासवाद भी कह सकते हैं, मानव हृदय विभूतियोंका परम विकास है । उनकी रामायणकी भी इसी विकासवादकी व्याख्या मात्र है । । पन्तजीकी भाँति 'कुवेम्पु' जीने भी राम कथाको युग विकासकी चेतनाके विकासकी व्याख्याके रूपमें जीवकी अन्नमय भूमिकासे आनन्दमय भूमिकाकी ओरकी यात्राका इतिहास कहा है । किन्तु इस विकास-परम्परामें भौतिकताका परिष्कार है, तिरस्कार नहीं है, उन्नयन है (sublimation) । आजके कलह, कोलाहल आदिसे ताड़ित एवं व्यथित होता हुए भी कवि आशावादी रहा है । उसकी यह ध्रुव धारणा है कि मानवताका विकास दैवत्वमें अवश्य होगा, किन्तु उसके लिए मानवमें अभीप्सा, निरन्तर साधनाकी, कामनाकी आवश्यकता है ।

जिसको पन्तजी नवचेतनवाद अथवा नवमानववाद कहते हैं, वही भाव'कुवेम्पु' जीके काव्यमें भी दर्शित होता है । 'कुवेम्पु' जीके चिन्तनके लिए योगिराज अरविन्दके जीवनकी भूमानुभूतिकी पुष्टि मिली । विश्वकल्याणके लिए 'कुवेम्पु' जी अरविन्दको इतिहासकी सबसे बड़ी देन मानते हैं । उनका यहाँ तक विचार है कि एक ऐसा दिन आएगा जब कि विश्वके सब प्रधान विश्व विद्यालयोंमें 'अरविन्ददर्शन' के लिए ही एक स्वतन्त्रपीठकी स्थापना होगी ।

जड़ और चेतन सान्त एवं अनन्त, क्षर एवं अक्षर सबमें उन्होंने सत्यकी प्रतिष्ठा की है :-

चेतन मूर्तियु आ कल्लु
तेगे जडवेंबुदु सुळ्ळु !

(चैतन्य मूर्ति है वह प्रस्तरखण्ड, छोड़ो, जड़ नामकी वस्तु ही मिथ्या है ।)

चैतन्यके जडवेंबुदु
कविभावके भाषे

(जड़ चैतन्यके लिए, कवि भावके लिए भाषाका जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध जड़ एवं चेतनमें है ।)

स्थूल जड जगवेल्ल
ध्यान दृष्टिगे भावविन्यासदंददि
वेधवागुतिदे । कविदर्शनके जडविल्ल;
जडवेंबुदेल्ल चेतनेय नटने यलीले ।

(सभी स्थूल एवं जड जगत ध्यान दृष्टि को भावविन्यास की भाँति दृष्टिगत हो रहा है । कवि के दर्शन में जड वस्तु है ही नहीं, जड चैतन्य की नाट्य लीला है ।)

शिव तत्वको खोज तो कविने सर्वत्रकी है । यहाँ तक कि 'कुवेम्पु' जीका विचार है कि शिव ही काव्यका नेत्र है :-

शिव काणदे कवि कुरूडनो
शिव काव्यय कण्णो ।

(शिवको देखे बिना कवि अन्धा है, शिव ही काव्यका नेत्र है ।)

'कुवेम्पु' जीकी यह ध्रुव धारणा है कि दर्शनके बिना काव्य बन सकता है, किन्तु महाकाव्य नहीं, चिरन्तन काव्य नहीं। अतः क्रान्तदर्शी कविको अस दर्शनके द्वारा मानवताके विकास-पथका आलोकित करना है।

'कुवेम्पु' जी युगचेतनाकी ओर सतर्क हैं । वे निरे आशावादी नहीं हैं, वर्तमान परिस्थितियोंके प्रति गाढ़ विषाद भी उनके मनमें हैं; किन्तु सुदूर भविष्यके ज्योतिर्मय दोनोंकी आशा उन्हें धीरज बँधाती है ।

'कुवेम्पु' जीने मानवताको नाशके स्थानपर निर्माणका, जड़के स्थानपार, चैतन्यका, वैषम्यके स्थानपर समन्वयका, घृणाके स्थानपर प्रेमका सन्देश दिया है ।

'कानूरू हेग्गडिति' 'कुवेम्पु' जीका बृहत् उपन्यास है, जिसे हम मलेनाडु (पर्वत प्रदेश) का महाभारत कह सकते हैं । मानव एवं प्रकृतिके संघर्ष एवं प्रेमकी व्यञ्जना करनेवाली मार्मिक कृति हैं । इसमें सैकड़ों पात्र हैं । यह वहाँके कृषक एवं श्रमजीवियोंके जीवनकी आशा-आकांक्षा, राग विरागका रत्न दर्पण है । उनकी कहानियाँ 'मेरे देवता तथा अन्य कहानियाँ' आदि स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण

आदि जीवनियाँ 'मले नट्टि चित्र' आदि गद्य चित्र कन्नड़की श्रीवृद्धि करनेमें महत्वपूर्ण योग देते हैं । जीनवका ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है, जिसका स्पर्श 'कुवेम्पु' जीने नहीं किया हो ।

29.5 निष्कर्ष

निस्संदेह कुवेंपुजी आधुनिक कन्नड साहित्य के क्षेत्र में अग्रगण्य हैं। उनका सारा साहित्य समस्तमानव की मंगलकामना करता है । जिसमें विविध प्रकार के प्रगीतों का मधुर स्वर गूँजरहा है, जिसमें भावोच्छास की गम्भीर विह्वलता है, जिसमें गम्भीर मनोविश्लेषण के आधार पर भावुकता थिरकती है, जिसमें सुर, लय, ताल के सन्तुलित सम्येलनपर मानव प्रेम की भावनायें नृत्य करती हैं, जिस में भावों की मृदुता एवं यसृणता में कवि का गम्भीर व्यक्तित्व भी मिलाहुआ है । जिसमें नई भावभूमि के साथ-साथ मानव-एकता भी विद्यमान है । जिसमें समाज में प्रचलित भेद-भावों के निराकरण के साथ-साथ कवि का जीवन-दर्शन भी है । पद्य हो या गद्य दोनों में कुवेंपुजी ने अपनी मानवीयता का दर्शन कराया है, इनकी कृतियों में भावुकता एवं आवेश की झंझा के साथ लोकमंगल की मलयानिल भी है और इनमें कवि की कमनीय कल्पना चित्रमय एवं रसमय होकर आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति के ठोस धरातल पर व्यक्त हुई है।

29.6 बोधप्रश्न

1. कुवेंपुजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन कीजिए।
2. कुवेंपु के 'रामायण-दर्शनम्' की विशेषताओं को प्रस्तुत कीजिए।
3. कुवेंपुजी ने अपनी कृतियों के द्वारा मानव को क्या संदेश दिया है ? सविस्तार विवेचन कीजिए ।

29.7 नमूने का उत्तर

प्र : कुवेंपुजी ने अपनी कृतियों के द्वारा मानव को क्या संदेश दिया है ? सविस्तार विवेचन कीजिए।

उत्तर : 'कुवेम्पु' जी मूलतः प्रकृतिके कवि है; उनकी काव्य चेतनाके निर्माणमें प्रकृतिका विशेष प्रभाव है । किन्तु प्रकृतिने उन्हें पलायनवादी नहीं बनाया, उसकी विकास-परम्पराने कविको गम्भीर चिन्तक बनाया है । उनके चिन्तनको जीवशास्त्र, मनोविज्ञान एवं पदार्थ विज्ञानके तथ्योंने सम्बल दिया है । अतः 'कुवेम्पु' जी समन्वयके विराट् गायक हैं । उनके काव्यमें परा एवं अपरा विद्याका ज्ञान एवं विज्ञानका श्रेय एवं प्रेयका आदर्श एवं यथार्थका मधुर समन्वय है । बुद्धि एवं हृदयके समन्वयके बारेमें तो उनका स्पष्ट कथन है - 'बुद्धि-भावोंका विद्युदालिंगन ही प्रतिभा है ।' कुवेम्पुजी विकासवादी कवि है । जिस प्रकार एकानुजीवी अमीबा विकसित होते-होते मानवके रूपमें परिणत हुआ है, उसी प्रकार मानवको भी विकासपथमें अग्रसर होना है किन्तु यह बहिर्विकास नहीं है, केवल बहिर्विकास ध्वंसात्मक है । सब प्रकारके बहिर्विकासोंको अन्तर्विकासमें परिणत होना है । इस अन्तर्विकासके लिए मानवमें तीव्र अभीप्साका रहना नितान्त वांछनीय है । इसी अभीप्साके कारण भंगकीट न्यायकी भाँति मानव ही देव बन सकता है :-

हारैसु हारैसु हारैसु, जीव
हारैसु नीनागुवन्नेगं देव !
हारैसि हारैसि हारैसि
अन्न तानादुदै प्राण ;
हारैसि हारैसि हारैसि
हारिदुदो नीरधिय मौन !
हारैसि हारैसि हारैसि
प्राणगुदिसिवु मनोज्ञान ;
हारैसि हारैसि हारैसि
सिद्धियात्मात्मविज्ञान !

(हे जीव ! तुम अभीप्सा करो, कामना करो जबतक तुम देव न बनो तब तक अभीप्सा करते रहो । अभीप्सा करते-करते अन्न प्राण बना, अभीप्सा करते-करते ही सागरकी मछली उड़ने लगी । तैरनेवाली मछली उड़नेवाला पक्षी बन गयी इसी अभीप्साके कारण । अभीप्सा करते-करते प्राणमें मनोज्ञानका उदय हुआ । इसी

प्रकारकी तीव्र अभीप्साके कारण आत्मविज्ञानकी सिद्धि हुई । अतः तुममें उस प्रकारकी उत्कट अभीप्सा रहनी है ।)

'कुवेम्पु' जी चैतन्यवादी है; वे जड़ एवं चेतनमें किसी प्रकारका भेद नही मानते है । जड़की निरन्तर अभीप्साके कारण ही वह चेतन बन रहा है :-

हारैसि हारैसि हारैसि
हसुरनुसुर्दुवो कल्लुमण्णु;
हारैसि हारैसि हारैसि
कुरूडु जडकुदिसितय् कण्णु !
हारैसि हारैसि हारैसि
चित् उरूळ्दुदु सुत्ति सुरूळि;
हारैसि हारैसि हारैसि
मृत् अरळ्वुदो अत्ते मरळि !

(अभीप्सा करते-करते प्रस्तर खण्डोंमें मृत्पिण्डोंमें शस्योंका उदय हुआ । इसी सतत अभीप्साके कारण ही अन्ध जड़में चैतन्यका नेत्र फूट पड़ा । इसी अभीप्सामें रत रहनेके कारण जड़ जगतमें चैतन्यका उदय हुआ । इसी निरन्तर अभीप्साके कारण ही हमारी यह मृण्मयी वसुन्धरा देवभूमि बनेगी ।)

इसी विकास परम्पराके कारण कुवेम्पुजीका विचार है कि इस जगत् में एक प्रकारकी पूर्ण दृष्टि स्थापित होगी । उन्होंने एक जगह बताया है - "जागतिक जीवन अनेकतासे एकताकी ओर चल रहा है, अनेकताका नाश करनेवाली एकताकी ओर नहीं समन्वयात्मक एकताकी ओर। तत्परिणाम अथवा तत्कारण एक पूर्ण दृष्टि सिद्ध हो रही है । इस पूर्ण दृष्टि एवं समन्वय बुद्धिके परिणामस्वरूप एक प्रकारकी सर्व समानताका समता भाव उदित हो रहा है । राजकीय एवं आर्थिक रंगोंमें वह वर्णपूर्ण बने कलह एवं सन्धियोंसे रञ्जित हो प्रकट हो रहा है । किन्तु सामाजिक एवं धार्मिक तथा साहित्यिक कलारंगोंमें वह अपने निगूढ़ कार्यमें रत है ।

मत, धर्म, एवं देवता आदिके बारेमें भी संकीर्ण भावनाएँ विशाल भावनाओंमें परिणत हो रही है । उग्र राष्ट्रीयताकी स्वार्थता एवं स्वप्रतिष्ठा अन्तरराष्ट्रीय आदान-

प्रदानकी मैत्रीकी शरणमें गए बिना शान्ति एवं क्षेम किसी भी देशको चाहे वह कितना भी बड़ा हो, बलिष्ठ हो, श्रीमान् हो - प्राप्त नहीं हो सकते । इस प्रकारकी मनोवृत्ति राजकार्योंमें और समयसे अधिक आज उदित हो रही है । सम्पत्तिके विनियोगमें सबका समभाग, सबके समजीवनवाले मूलतत्वका अनुष्ठान दिन दूनी रात चौगुनी गतिसे बढ़ रहा है । सर्वोदय सिद्धान्त संस्थापित हो रहा है ।

इन सबकी ओर लक्ष्यकर हम यह निस्सन्देह बता सकते हैं कि समन्वय, सर्वोदय एवं पूर्ण दृष्टि - ये तीन महान् तत्व संसारके भविष्य जीवनके मूल मन्त्र बनेंगे । ये मूलमन्त्र ही भावी साहित्यके मार्गदर्शक बनेंगे ।'

'कुवेम्पु' जीकी सूक्ष्म चेतना मार्क्सवादी आदर्शों और सर्वथा निरपेक्ष भौतिक यथार्तोमें ही लिप्त रहकर परितोष नहीं पा सकता । यहाँ तक कि उनको उससे विरक्ति हो गई । उसी तत्वको भारतीय भावभूमिमें प्रतिष्ठापित करनेवाला तत्व है सर्वोदय । अतः सर्वोदय, जिसमें हिंसाके लिए स्थान नहीं है, जिसमें मानवीय उच्च मूल्योंके प्रति आस्था है, 'कुवेम्पु' प्रिय विषय बना है, सर्वोदयरवि सन्त विनोबाके सत्संगोंको प्राप्त कर 'कुवेम्पु' जी पुनीत हुए हैं ।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि 'कुवेम्पु' जीको भौतिक वस्तुओंसे तिरस्कार है, चिढ़ है । उनकी आध्यात्मिकता साम्प्रदायिक नहीं है, मनोवैज्ञानिक है । उसमें आध्यात्मिक मानववाद, जिसे हम आध्यात्मिक विकासवाद भी कह सकते हैं, मानव हृदय विभूतियोंका परम विकास है । उनकी रामायणकी भी इसी विकासवादकी व्याख्या मात्र है । । पन्तजीकी भाँति 'कुवेम्पु' जीने भी राम कथाको युग विकासकी चेतनाके विकासकी व्याख्याके रूपमें जीवकी अन्नमय भूमिकासे आनन्दमय भूमिकाकी ओरकी यात्राका इतिहास कहा है । किन्तु इस विकास-परम्परामें भौतिकताका परिष्कार है, तिरस्कार नहीं है, उन्नयन है (sublimation) । आजके कलह, कोलाहल आदिसे ताड़ित एवं व्यथित होता हुए भी कवि आशावादी रहा है । उसकी यह ध्रुव धारणा है कि मानवताका विकास दैवत्वमें अवश्य होगा, किन्तु उसके लिए मानवमें अभीप्सा, निरन्तर साधनाकी, कामनाकी आवश्यकता है ।

जिसको पन्तजी नवचेतनवाद अथवा नवमानववाद कहते हैं, वही भाव'कुवेम्पु' जीके काव्यमें भी दर्शित होता है । 'कुवेम्पु' जीके चिन्तनके लिए योगिराज अरविन्दके जीवनकी भूमानुभूतिकी पुष्टि मिली । विश्वकल्याणके लिए 'कुवेम्पु' जी अरविन्दको इतिहासकी सबसे बड़ी देन मानते हैं । उनका यहाँ तक विचार है कि एक ऐसा दिन आएगा जब कि विश्वके सब प्रधान विश्व विद्यालयोंमें 'अरविन्ददर्शन' के लिए ही एक स्वतन्त्रपीठकी स्थापना होगी।

जड़ और चेतन सान्त एवं अनन्त, क्षर एवं अक्षर सबमें उन्होंने सत्यकी प्रतिष्ठा की है :-

चेतन मूर्तियु आ कल्लु
तेगे जडवेंबुदु सुळ्ळु !

(चैतन्य मूर्ति है वह प्रस्तरखण्ड, छोड़ो, जड़ नामकी वस्तु ही मिथ्या है ।)

चैतन्यके जडवेंबुदु
कविभावके भाषे

(जड़ चैतन्यके लिए, कवि भावके लिए भाषाका जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध जड़ एवं चेतनमें है ।)

स्थूल जड जगवेल्ल
ध्यान दृष्टिगे भावविन्यासदंददि
वेधवागुतिदे । कविदर्शनके जडविल्ल;
जडवेंबुदेल्ल चेतनेय नटने यलीले ।

(सभी स्थूल एवं जड जगत ध्यान दृष्टि को भावविन्यास की भाँति दृष्टिगत हो रहा है । कवि के दर्शन में जड वस्तु है ही नहीं, जड चैतन्य की नाट्य लीला है ।)

शिव तत्वको खोज तो कविने सर्वत्रकी है । यहाँ तक कि 'कुवेम्पु' जीका विचार है कि शिव ही काव्यका नेत्र है :-

शिव काणदे कवि कुरूडनो
शिव काव्यय कण्णो ।

(शिवको देखे बिना कवि अन्धा है, शिव ही काव्यका नेत्र है ।)

'कुवेम्पु' जीकी यह ध्रुव धारणा है कि दर्शनके बिना काव्य बन सकता है, किन्तु महाकाव्य नहीं, चिरन्तन काव्य नहीं। अतः क्रान्तदर्शी कविको अस दर्शनके द्वारा मानवताके विकास-पथका आलोकित करना है।

'कुवेम्पु' जी युगचेतनाकी ओर सतर्क हैं । वे निरे आशावादी नहीं हैं, वर्तमान परिस्थितियोंके प्रति गाढ़ विषाद भी उनके मनमें हैं; किन्तु सुदूर भविष्यके ज्योतिर्मय दोनोंकी आशा उन्हें धीरज बँधाती है ।

'कुवेम्पु' जीने मानवताको नाशके स्थानपर निर्माणका, जड़के स्थानपार, चैतन्यका, वैषम्यके स्थानपर समन्वयका, घृणाके स्थानपर प्रेमका सन्देश दिया है ।

'कानूरू हेग्गडिति' 'कुवेम्पु' जीका बृहत् उपन्यास है, जिसे हम मलेनाडु (पर्वत प्रदेश) का महाभारत कह सकते हैं । मानव एवं प्रकृतिके संघर्ष एवं प्रेमकी व्यञ्जना करनेवाली मार्मिक कृति हैं । इसमें सैकड़ों पात्र हैं । यह वहाँके कृषक एवं श्रमजीवियोंके जीवनकी आशा-आकांक्षा, राग विरागका रत्न दर्पण है । उनकी कहानियाँ 'मेरे देवता तथा अन्य कहानियाँ' आदि स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण आदि जीवनियाँ 'मले नट्टि चित्र' आदि गद्य चित्र कन्नड़की श्रीवृद्धि करनेमें महत्वपूर्ण योग देते हैं । जीनवका ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है, जिसका स्पर्श 'कुवेम्पु' जीने नहीं किया हो ।

निस्संदेह कुवेंपुजी आधुनिक कन्नड साहित्य के क्षेत्र में अग्रगण्य हैं । उनका सारा साहित्य समस्तमानव की मंगलकामना करता है । जिसमें विविध प्रकार के प्रगीतों का मधुर स्वर गूँजरहा है, जिसमें भावोच्छास की गम्भीर विह्वलता है, जिसमें गम्भीर मनोविश्लेषण के आधार पर भावुकता थिरकती है, जिसमें सुर, लय, ताल के सन्तुलित सम्येलनपर मानव प्रेम की भावनायें नृत्य करती हैं, जिस में भावों की मृदुता एवं यसृणता में कवि का गम्भीर व्यक्तित्व भी मिलाहुआ है । जिसमें नई भावभूमि के साथ-साथ मानव-एकता भी विद्यमान है । जिसमें समाज में प्रचलित भेद-भावों के निराकरण के साथ-साथ कवि का जीवन-दर्शन भी है । पद्य हो या गद्य दोनों में कुवेंपुजी ने अपनी मानवीयता का दर्शन कराया है, इनकी कृतियों में भावुकता एवं आवेश की झंझा के साथ लोकमंगल की मलयानिल भी

है और इनमें कवि की कमनीय कल्पना चित्रमय एवं रसमय होकर आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति के ठोस धरातल पर व्यक्त हुई है।

29.8 सहायक पुस्तके

1. होळहु - सी पी सिद्दश्रम
2. आधुनिक कन्नड साहित्य चरित्रे - एल. एस. शेषगिरिराव
3. साहित्य मत्तु समकालीन वास्तविकते - डा. एच. तिप्पेरूद्रस्वामी
4. हिन्दी - कन्नड - साहित्य दशाएँ और दिशाएँ - डा टी. आर. भट्ट

इकाई 30
Unit 30
" शिवराम कारंत और मास्तिवेंकटेश अय्यंगार "

इकाई की रूपरेखा

30.0 - उद्देश्य ।

30.1 - प्रस्तावना

30.2 - डा. शिवराम कारंत ।

30.2.1 - व्यक्तित्व विवेचन

30.2.2 - कृतित्व विश्लेषण

30.3 - यक्षगान और कारंत

30.4 - मास्तिवेंकटेश अय्यंगार ।

30.4.1 - व्यक्तित्व विवेचन ।

30.4.2 - कृतित्व विश्लेषण ।

30.5 - निष्कर्ष

30.6 - बोध प्रश्न

30.7 - नमूने का उत्तर

30.8 - सहायक पुस्तकें

30.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में शिवराम कारंत और मास्ति वेंकटेश अय्यंगार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करेंगे । इस इकाई को पढने के बाद आप -

- कन्नड कथा-साहित्य की स्थितिगतियों से अवगत हो जायेंगे ।
- शिवाम कारंतजी के व्यक्तित्व को समझ सकेंगे
- कारंतजी की रचनाओं की समीक्षा कर सकेंगे ।
- कारंतजी की वैचीरिकता को समझ सकेंगे ।
- मास्ति वेकंटेश अय्यंगार के व्यक्तित्व को पहचान सकेंगे ।

- मास्तिजी की रचनाओं का विश्लेषण कर सकेंगे ।
- मास्तिजी के चिंतन पक्ष से अवगत हो जायेंगे ।
- दोनों साहित्यकारों के योगदान को जान सकेंगे ।

30.1 प्रस्तावना

बीसवीं सदी के कन्नड साहित्य में कथा-साहित्य को अत्यंत समृद्ध बनाने का श्रेय डा. शिवराम कारंतजी को तथा श्री मास्ति वेंकटेश अय्यंगार जी को है। मास्तिजी ने कन्नड कहानी के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट छाप डाली है तो कारंत जी ने उपन्यास के क्षेत्र में । कारतंजी की प्रतिभा बहुमुखी है, उन्होंने उपन्यास, नाटक, यक्षगान आदि में अधिक रूचि दिखाई है । इसी तरह मास्तिजी कहानी साहित्य के आद्य जनक मानेजाते हैं । उन्होंने कन्नड के ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य को भी समृद्ध किया है । कारतंजी ने तीस से भी अधिक उपन्यास लिखे हैं तो मास्तिजी ने चालीस के करीब कहानियाँ लिखीं । मास्तिजी की रचनाओं में मानवतावाद लक्षित होता है, उनकी लेखक-कला और जीवन एक होकर चलते हैं । कारतंजी यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। जीवन की समस्याओं की गंभीर विवेचना तथा भावों की प्रांजल अभिव्यक्ति इनकी विशेषता है । इन दोनों साहित्यकारों को जानना अत्यंत आवश्यक है।

30.2 डॉ. शिवराम कारंत

30.2.1 व्यक्तित्व विवेचन

१९७८ कर्नाटक की जनता के लिए बेहद खुशी का वर्ष है । कन्नड़ भाषा एवं साहित्य की विजयपताका अखिल भारत के स्तर पर फहराकर कन्नड़ भाषी अतीव संतोष का विजयोत्सव मना चुके हैं । कन्नड़ भाषा-साहित्य की समृद्ध परंपरा और यहाँ की क्रियशीलता का प्रमाण उस बात में है कि तीसरी बार ज्ञानपीठ पुरस्कार कन्नड़ के एक और महान साहित्यकार को प्राप्त हुआ है, सो भी पूरे एक लाख रूपये का।

१९७७ के ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता डॉ. शिवराम कारंतजी कन्नड़ के मूर्धन्य साहित्यकार हैं जिनके उपन्यास "मूकज्जिय कनसुगळु" पर यह सर्वोच्च पुरस्कार मिला है, वास्तव में इस पुरस्कार को उनकी समग्र साधना के संदर्भ में देखना अत्यंत उचित होगा।

कन्नड़ भाषा को विशिष्ट शक्ति प्रदान करने और इस भाषा के साहित्य को समृद्ध बनाने की दिशा में कारंतजी इस शती के आरंभिक दशकों से जो सेवा करते आ रहे हैं, उसके लिए ज्ञानपीठ का पुरस्कार कभी मिल जाना चाहिए था । यद्यपि बहुतों के संबंध में यह कहते सुनते हैं कि फलाना व्यक्ति व्यक्ति नहीं संस्था है मगर कारंतजी के संबंध में तो सौ फी सदी यह उक्ति सार्थक और सही है । कालेज की शिक्षा से वंचित रहने पर भी अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के फलस्वरूप उन्होंने जीवन के सौ अनुभवों से साक्षात्कार किया, जगत के हजारों विषयों को पढ़ा, देखा, चिन्तन मन्थन किया, तत्परिणाम स्वरूप जो कुछ पाया उसे निर्वचना से दिया । इस दृष्टि से कारंत - साहित्य वास्तव में कल्पना की ऊँची उड़ान भरनेवाला साहित्य नहीं अपितु जीवन से घनिष्ठता रखनेवाला, कला को जीवन से संबद्ध करनेवाला साहित्य है । कारंतजी का अपने लोगों से, अपने समाज एवं देश से इतना प्यार रहा है कि अपने परिवेश को अज्ञान से, निरक्षरता के अभिशाप से मुक्त करने का आरंभ से प्रयत्न उन्होंने किया है। समाज को सचेतन एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान विचार बोध से परिचित कराने के उद्देश्य से अपने हज़ारों कष्टों के बावजूद जीवन भर निरंतर अपने को समर्पित करते आ रहे हैं । यह निश्चय ही अद्‌भुत आश्चर्य की बात रही है कि 'बाल प्रपंच' और 'विज्ञान प्रपंच' के अनेक खण्डों को अकेले के प्रयत्न के द्वारा विश्व के ज्ञान एवं विज्ञान के कुतूहल संसार को कन्नड़ के लाखों पाठकों के सम्मुख पेश करते समय कारंतजी ने जिन कष्टों का सामना किया, जिस मानसिक तनाव का अनुभव किया और कहाँ-कहाँ क्या-क्या पढ़ा-इन सब पर यदि चर्चा चिढ जाए तो लगता है मानों यह सब चमत्कार है । मगर यह कोई चमत्कार नहीं अपितु कारंतजी के 'भीमबल' का ज्वलंत प्रमाण है, उनकी साहसिक प्रवृत्ति के संकेत के रूप में यह सब है । 'बाल प्रपंच' और 'विज्ञान प्रपंच' आज भी इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं । कर्नाटक में हीं अपितु इस विश्व के सम्मुख कारंतजी एक जंगम ज्ञानपीठ के बराबर हैं ।

शिक्षा के क्षेत्र में नये-नये प्रयोंगों के द्वारा बच्चों और अध्यापकोंको परंपरागत शिक्षा प्रणाली से मुक्त करने और सिखाने की नयी प्रणालियों पर विस्तार से विचार करने के उद्देश्य से कारंतजी ने अपनी व्यक्तिगत हैसियत से पुत्तूर में एक प्रायोगिक स्कूल खोला जिसका नाम रखा 'बालवन' । अपने स्कूल के बच्चों के उपयोगार्थ उन्होंने अपना ही एक प्राणी-संग्रहालय और एक मिनि रेल का इंतजाम किया । बालवन बच्चों के मनोविकास का सुमधुर केंद्र के रूप में प्रतिष्ठापित हुआ। कन्नड़ भाषियों ने डॉ. शिवराम कारंतजी को बड़े आदर से 'कडल तीरद (समुद्रतटिय) भार्गव' कहा है जो न केवल उनके जन्मस्थल की ओर निर्देश करता है किंतु किसी भी अन्याय, अत्याचार, शोषण से और यहाँ तक कि बेतुके विचारों से सफासट अपने विरोध एवं रोष को प्रकट करनेवाले उनके स्वभावगत गुण की ओर भी यह विशेषण संकेत करता है।

डॉ. कारंतजी का जन्म कर्नाटक राज्य के उडुपि के पास के एक गांव कोट के ब्राह्मण परिवार में हुआ । कोटा ब्राह्मणों के जैसे शुद्ध ब्राह्मण नहीं हैं - यह उन दिनों कहावत जैसी प्रचलित बात थी । इस 'कोटा' परिवार में जन्मे कारतंजी मात्र कोटा के ही न रहकर अखिल भारत के हुए - यह उनकी साधना की उपलब्धि है । इनके पिताजी स्कूल मास्टर थे जिन्होंने उन दिनों अठन्नी के वेतन पर अपना व्यवसाय शुरू किया था । कारंत जब कि कालेज में पढ़ रहे थे तब राष्ट्र के नाम पर गाँधीजी के आह्वान से देश के हजारों युवकों के जैसे कारंत जी ने भी कालेज की पढ़ाई को तिलांजलि देकर राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य यज्ञ में सक्रिय भाग लिया । पराधीन भारत की दुर्गति से बेचैन होकर आजादी की लड़ाई में अपने को उत्सर्ग किया । गाँधीजी के सिद्धांतों को गांवों में जाकर द्वार द्वार प्रचारित करने का कार्य किया । देश के राजनीतिक क्षेत्र ने कारंतजी को आकर्षित तो किया मगर कारंतजी उस क्षेत्र के ही न रह गए । अपने यौवन काल में रामकृष्ण, विवेकानन्द जैसे महान विभूतियों से जिस प्रकार प्रभावित हुए उसी प्रकार गाँधीजी के सामाजिक सिद्धांतों से भी आकृष्ट हुए । मानव मानव के बीच की खाई की ओर निर्देश करते हुए गांधीजी के इस सवाल ने कि 'कुत्ते को छू सकते हो ? मनुष्य को क्यों नहीं ?' कारंतजी को अभिभूत कर दिया । गाँधीजी के विचारों से प्रभावित होकर कारंतजी ने उनके

रचनात्मक कार्यों में विशेष दिलचस्पी लेकर उनके प्रसार में महत्वपूर्ण सहयोग दिया । व्यक्ति और समाज के पीछे पड़कर इन दोनों को नया अलोक प्रदान करने के लिए कारतंजी ने क्या-क्या नहीं किया ! भाषण दिये, सुधारवादी दृष्टिकोण से उपन्यास लिखे ।

डॉ. कारतंजी अपनी स्पष्टवादिता एवं निर्भीकता के लिए अत्यंत प्रसिद्ध हैं । व्यक्ति कोई भी रहे और परिस्थिति कैसी भी रहे, किसी की परवाह लिए बिना अपने मन के विचारों को बिना किसी झिझक के बता देना इनकी सहज प्रवृत्ति रही है । यहाँ तक कि गाँधीजी से मतभेद रखने और उनकी विचारधारा से बिलकुल अलग रूख अपनानेवाले कारंतजी एक दृष्टि से गाँधीजी से भी आगे हैं । एक बार ऐसा हुआ कि वेश्या परिवार की एक कन्या की शादी करवाने के लिए कारंतजी ने जमीन-आसमान एक किया पर उसमें उन्हें आसानी से सफलता नहीं मिली तो उन्होंने गांधीजी के नाम एक पत्र लिखकर उनकी सलाह मांगी तो गांधीजी से यह सलाह आयी कि ऐसी लडकियाँ आजीवन पर्यंत ब्रह्मचर्या का पालन करें। गाँधीजी की इस सलाह से कारतंजी इतने विचलित हुए कि बड़ी मुश्किल से एक लड़के की तलाश करके उस लडकी की शादी संपन्न कराये । यह एक मिसाल है। कारंतजी की मानवीय भावना की शीतल छाया में तृप्ति की साँस ले रहे प्रसंग आने और कितने रहे होंगे !

अन्याय, अत्याचार, शोषण, निरंकुशता का बोलबाला जहाँ कहीं रहा उसका कारंतजी ने सदैव विरोध किया है - अपनी व्यक्तिगत मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा के मोल पर । देश भर में पिछले वर्षों जब कि आपात्कालीन स्थिति घोषित हुई, नागरिक के मूल अधिकार जब्त हुए और देश में निरंकुशता अपनी चरमसीमा तक पहुँच गई तो कारंत ने उसका खुल्लमखुल्ला विरोध किया, यहाँ तक कि हिन्दी के साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु तथा अन्य इनेगिने लेखकों की भांति इन्होंने भी भारत सरकार से प्रदत्त "पद्म भूषण" उपाधि निस्संकोच लौटाकर लेखकीय ईमानदारी की रक्षा की । और १९७७ के चुनावों में इन्हीं मानवीय मूल्यों को देश भर में प्रतिष्ठापित करने के लिए अपनी आवाज़ उठायी ।

कारंतजी का तो बावरा मन है । उनकी आत्मकथा वाली पुस्तक का शीर्षक है "हुच्चु मनस्सिन हत्तु मुखगळु" (बावरे मन के दस चेहरे) । सच पूछा जाय तो यह निश्चय ही बावरे हैं । यदि बावरे न होते तो इतना सब क्यों करते । इतना सब क्यों सहते आखिर दुनिया भर के विषयों में आसक्त होकर उन सबको अपनाने और सबको अपना कुछ देने की उत्कटता ने इनको चैन की नींद नहीं दी। अपने इस बावरेपन के संबन्ध में स्वयं कारंतजी का कहना है कि 'विष्णु के दस अवतार हैं तो मेरे ध्येयों को सोलह अवतार लेना पड़ा । राष्ट्रभक्ति, स्वदेशी व्यापार, पत्रकारिता, अध्यात्म साधना, कला के भिन्न-भिन्न रूपों का अध्ययन यथफोंटोग्रफी, नाटक, नृत्य, चित्र, वास्तुशिल्प, संगीत, सिनेमा, इतना ही नहीं समाजसुधार, ग्रामोद्धार, शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग आदि अवतार हो चुके हैं । इसके बाद पुस्तकें लिखने से लेकर छापने और उन्हें बेचने तक सब कुछ किया है । स्वतंत्र जीवन से गुरू, कवि, सन्यास जीवन से होते हुए पारिवारिक जीवन से भी गुज़रा हूँ । "

उपरोक्त सभी क्षेत्रों में कारंतजी ने पूरी लगन के साथ साधना करके जो हासिल किया है वह सचमुच तत्संबन्धी क्षेत्र की उपलब्धि है । कारंतजी की किसी भी देन को नजरंदाजी से नही देखा जा सकता है क्योंकि कारंतजी का गंभीर, अध्ययन, चिंतन-मन्थन का सार उनकी हर साधना में रहता है ।

30.2.2 कृतित्व विश्लेषण

कारंतजी ने हालंकि साहित्य की हर विधा पर कलम चलायी है फिर भी उपन्यासकार और यक्षगान - लोकनाटय के विद्वान एवं कलाकार के रूप में इनकी अत्यधिक ख्याति है । अपने साहित्यिक जीवन के आरंभिक दिनों में जासूसी और 'देवदूतरू' जैसे विडम्बनात्मक उपन्यास की रचना की थी पर जब कि उन्होंने "चोमनदुडि" लिखा तब कारंत युवक थे - करीब ३० वर्ष के । मगर उपन्यास क्षेत्र में गम्भीर रूप से प्रवृत्त होकर लिखने का कार्य उन्होंने 'मरळि मण्णिगे' से किया। तब तक इनके जीवन के दर्शन में स्पष्टता आयी थी । जीवन के नाना क्षेत्रों में पाये गए, भोगे गए सुख दुख, मानव स्वभाव की नाना परतों को अत्यन्त निकट से देखकर प्राप्त अनुभव और लोकजीवन के विभिन्न स्तरों पर हासिल किए गए

विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों ने कारंतजी को मनुष्य एवं मनुष्य की जिन्दगी के संबन्ध में, समाज और देश के संबन्ध में एक प्राकार से अपूर्व शक्ति प्रदान की थी। अपने जीवन में देखे एवं भोगे गए क्षण कारंतजी को कभी हल्के नहीं लगे । वैसे कारंतजी के लिए कोई भी विचार हल्का नहीं है । हर अनुभव का अपना महत्व है । यही कारण है कि कारंतजी की औपन्यासिक कृतियों में समस्याओं का गंभीर विवेचन रहता है । मानव मन का गहन विश्लेषण सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तर तक वह करते जाते हैं । अर्थात् कारंतजी के उपन्यासों में वैचारिकता का पुट अधिक है। परिणाम-स्वरूप अपने विचारों को कलात्मक दृष्टि से सजाने की ओर इन्होंने उतना महत्व नहीं दिया । स्वयं कारंतजी के अनुसार विचारों की सजावट की तरफ जब कि साहित्यकार का ध्यान जाता है तो आत्म भिव्यक्ति में अड़चन होगी । इस दृष्टि से कारंत जी की रचनाओं में शिल्प एवं तन्त्र के बजाय विचारों को प्रमुख स्थान मिला है । यही कारण है कि उनके उपन्यास प्रौढ़ एवं प्रबुद्ध पाठकों को जिस प्रकार पसंद आते हैं उसस प्रकार साधारण पाठक एवं सामन्य विद्यार्थियों और घर बैठे समय बिताने के उद्देश्य से पढ़नेवाली देश की हजारों महिला पाठिकाओं के लिए कारंतजी का उपन्यास 'बोर' लगते हैं । इन उपन्यासों के पन्न-पन्ने में सस्ता मनोरंजन या हल्की बाजारू कथावस्तु के बजाय वास्तविकता की भूमि पर जीनेवाले लाखों मनुष्यों की लाखों पीड़ाओं का दस्तावेज बिखरा रहता है । आम आदमी के जीवन के संघर्षों का, उनके स्वभाव का यथार्थत चित्रण इनके उपन्यासों का मुख्यबिन्दु है। 'जिन्दगी से मुझे प्यार हैं, कहनेवाले कारंतजी की दृष्टि मनुष्य के क्रिया-कलापों पर, उसकी करनी पर केंद्रीकृत रही है । मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना के लिए जीवन भर जूझते आ रहे कारंत के उपन्यासों को कथन शैली के लिए नहीं अपितु विचारों के लिए पढ़ा जाना आवश्यक है।

डॉ. कारंतजी के लिखे उपन्यासों की सख्या २५ से भी ज्यादा है । इन सभी उपन्यासों की कथावस्तु एवं समस्याएँ मानव जीवन के नाना पहलुओं पर आधारित हैं। चोमनदुडि, सरसम्मन समाधि, मरळि मण्णिगे, अळिदमेले, बेट्टदजीव, कुडियर कूसु, शनीश्वरन नेरळिनल्लि, समीक्षे, आळ निराळ, नंबिदवर नाक, नरक, स्वप्नदहोळे, चिगुरिद कनसु, इद्दरू चिन्ते, मै मनगळ सुळियल्लि, मूकज्जिय

कनसुगळु - आदि उनके उपन्यासों के शीर्षक हैं जिनमें कारतंजी ने मनुष्य जीवन के कुछ महत्वपूर्ण सवालों यथा उसके विश्वासों, द्वन्द्वों भ्रमों, आशा-आकाक्षाओं, जन्म-मरण लैगिक संबन्धों के लेकर कथासूत्र के आवरण में विशद चर्चा की है ।

'चोमनदुडि' कारंतजी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है जो कि आकार में छोटा है परंतु इसमें उठाई गई समस्या इतनी गम्भीर उन दिनों में थी भी जितनी आज है । कारंतजी ने हरिजन समस्या के प्रति अपने साहित्यिक जीवन के आरंभिक दिनों में जितती पैनी दृष्टि से विचार किया है वह अपने में लाजवाब है। 'चोमनदुडि' में हरिजनों की करूण कहानी निरूपित है । हिन्दी के महान साहित्यकार प्रेमचन्द की महत्वपूर्ण उपलब्धि 'गोदान' की वस्तु भी दलितों की है । 'चोमनदुडि' का चोम और 'गोदान' के होरी में वैसे कोई अंतर नहीं है । इन दोनों का जीवन विधान एक सा है, दोनों की आकाँक्षाएँ एक सी हैं । चोम अपने जीवन में एक एकड़ जमीन का मालिक बनना चाहता है, दो बैल रखना चाहता है और ये दोनों अपनी कही जानेवाली जमीन के मालेक कहलाने की अंदरूनी आकांक्षा को देनेवाले दो असहायक हरिजनों की करूण एवं मर्मस्पर्शी कहानी है । और चोम के जीवन की ट्रेजडी यह है कि, जबकि 'गोदान' के होरी के पास उसके दुखदर्द में समान रूप से सहयोग देनेवाली पत्नी है मगर 'चोमनदुडि' का चोम नितान्त अकेला है । अपने इस अकेलेपन के कारण चोम का जीवन अत्यंत दारूण होता है । (होरी और चोम की संताने हैं जो अलग-अलग रास्ते अपनाते हैं, सो अलग बात है) मैं समझाता हूँ कि होरी से भी चोम का जीमन अत्यंत सजीव एवं यथार्थ बन पड़ा है । इन दोनों उपन्यासों पर अच्छा तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है ।

१९३३ में प्रकाशित 'चोमनदुडि' १९३५ में प्रकाशित मुल्कराज आनन्द का 'अनटचेबल' और प्रेमचन्द का 'गोदान' भारतीय साहित्यकारों से एक ही समस्या पर लिखे तीन महत्वपूर्ण उपन्यास हैं जो आज के संदर्भ में भी अपने महत्व को बनाए रखे हुए हैं।

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कारंतजी का उपन्यास 'मूकाज्जिय कनसुगळु' (गूँगी बुढिया के सपने) का कन्नड़ साहित्य में विशिष्ट स्थान है जिसमें मानव का इतिहास है, हमारे सांस्कृतिक इतिहास का दस्तावेज है, लैंगिक संबन्धों का विश्लेषण

है, मनुष्य स्वभावों, उसके विश्वासों का विश्लेषण है । इस उपन्यास में चर्चित विचारों के संबन्ध में स्वयं कारतंजी का कहना है कि "इस उपन्यास का कोई कथानायक नहीं है, कथा नायिका नहीं है । मूकज्जी (गूँगी बुढ़िया) भी यहाँ की नायिका नहीं है । सांप्रदायिकता से जँग मन को थोड़ा सा गरम करके उसे पिघलाने का कार्य उसका है । यदि ऐसा संशय आ जाए कि कहीं ऐसी कोई बुढ़िया हो सकती है तो ऐसा समझना बेहतर है कि हमारी संस्कृति के अनेकों विश्वासों के संबन्ध में अनुमान रूपी प्रेत का रूप ही वह है । तथापि हम में से अनेकों में प्रेत के रूप में नहीं प्रामाणिक संदेह के रूप में जीती आ रही है । उसके पोते सुब्बराय के जैसे रहनेवाले भी अनेक हैं ।"

'वह बुढ़िया, पोता - ये दोनों मिलकर चार पाँच हजारों वर्षों से चलती आ रही 'सृष्टि समस्या' का मन्थन करने का प्रयत्न यहाँ करते हैं ।अंवास्तविक लगनेवाली बुढिया अपने वास्तविक ऐतिहासिक अंशों को अपनी आंतरिक दृष्टि से हमारे सामने प्रस्तुत करती है ।'

मूकज्जी इस उपन्यास की कथानायिका न सही मगर केंद्र बिन्दु है । सुब्राय और नारायण उसके दो पोते हैं । सुब्बराय की दृष्टि में बुढ़िया महान है, आदरणीय है, उसमें अंतदृष्टि है, अपने लोकानुभव के आधार पर मानव मन को समझती है और अपनी दृष्टि से व्याख्या करती है । जीवन और जगत के प्रति सुब्बराय के मन में कौतूहल और जिज्ञासा की दृष्टि पनपने के लिए यह बुढ़िया ही कारण है। एक तरफ सुब्बराय आधुनिक मन के द्वद्वों, जिज्ञासों का केंद्र है तो दूसरी तरफ इन सभी का समाधान करनेवाली मूकज्जी अनुभवों का आगार है । "मूकज्जिय कनसुगळु" का कन्नड़ उपन्यास साहित्य में विशिष्टस्थान उसकी इस वैचारिकता के कारण है ।

30.3 यक्षगान और कारंतजी

साहित्य के क्षेत्र में डॉ. कारतंजी को जो महत्वपूर्ण स्थान है वही स्थान यक्षगान लोकनाटय के क्षेत्र में भी है । यक्षगान और कारंतजी के बीच का रिश्ता कल परसो का नहीं अपितु अपने बचपन से इन्होंने इस कला के साथ घनिष्ट संबन्ध रखा है, याने पचास साल से भी ज्यादा असै से यक्षगान के प्रति इनकी रूचि रही है केवल

रूचि मात्रा नहीं उस परंपरागत नाटयकला को सजिन्दा रखने के लिए और उसे नये नये आयाम देने के उद्धेश्य से कारंतजी ने अपने जीवन के बहु संख्यक वर्षों को व्यतीत किया है । संसार के अनेकों देशों में घूमकर वहाँ की नाटय पद्धतियों से, वहाँ की रंगभूमि, साहित्य, वर्ण, चित्रकला, सौन्दर्यशास्त्र के गंभीर अध्ययन और अपने अगाध अनुभव से यक्षगान की अपनी विशिष्टताओं की रक्षा करते हुए कारंतजी ने जिन नाटय-रूपकों की रचना की है, उनसे न केवल कारंतजी को अपितु यक्षगान लोक नाट्य को विशेष आदर मिला है ।

यक्षगान लोक-नाट्य पर असंदिग्ध रूप से बोलनेवाले कुछ ही इने गिने साहित्यकारों में से कारतंजी का विशिष्ट स्थान है । १९३८ में, अमेरिका की 'एशिया' पत्रिका में और भारत की अनेक ख्यात पत्रिकाओं में यक्षगान के अनेक चित्रों के साथ लेख प्रकाशित किये । १९४५ में मैसूर और १९५५ में कर्नाटक विश्वविद्यानिलय में यक्षगान लोकनाट्य पर इनके दिये गए विद्वत्तापूर्ण भाषणों का परिवर्धित रूप ही 'यक्षगान बयलाट' नाम से ग्रँथ के रूप में प्रकाशित हुआ जिस पर स्वीड़त के कला संस्थान का पुरस्कार मिला और इसी ग्रंथ पर केंद्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला।

यक्षगान का पुनरूद्धार करने में डॉ. कारतंजी शुरू से क्रियाशील रहे हैं । १९४८ के बाद उन्होंने यक्षगान पर अनेक गोष्टियां चालाईं। यक्षगान संगीत के अनेक भूले बिसरे रागों का फिर से पुराने भागवतों की साहायता से ध्वनिमुद्रण किया । यक्षगान की अनेकों भाव-भगीमाओं और उसकी राग-रागीनियों के अनुकूल पड़नेवाले नये रागों का सृजन नये वाद्यों की सहयता से किया । यक्षगान की वेष-भूषा की अभिव्यक्ति के अनुकूल बनाने के लिए इनमें नयी चेतना भरी । कारंतजी के प्रयोगशील कृतित्व के कारण यक्षगान इधर अंतर-राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्टापित हो रहा है । कथक्कळी की भाँति यक्षगान भी रसिक जनों का ध्यान आकृष्ट कर रहा है ।

डॉ. कारतंजी की इस साधना के लम्बे मार्ग में आई अड़चनों की भी कमी नहीं है । १९६१में कारंतजी ने कुछ नृत्यरूपक बनाये तो उनको अनेक आक्षेपों का सामना करना पड़ा । यहाँ तक कहा गया कि कारंत यक्षगान की हत्या कर रहे हैं ।

इन सबके बावजूद कारंतजी ने अपनी साहसिक प्रवृत्ति केंद्र स्थापित हुआ था वह नाना कारणों से स्थगित हुआ था । फिर १९७१ में संगीत नाटक अकादनी के तत्वावधान में मणिपाल अकादमी आफ एजुकेषन संस्था की सहायता से उडुपि में यक्षगान को नया आयाम दिया । भीष्मविजय, रतिकल्याण, कनकांगि आदि नवीन नृत्य रूपकों की संयोजना करके कर्नाटक के नाना भागों में ही नहीं अपितु बाहर भी प्रदर्शित किया । कारंतजी के यक्षगान का रूप के स्वरूप यक्षगान के पारंपरिक नाटकों से भिन्न है । यक्षगान की मूल सामग्रियों का उपयोग करके कारंतजी ने अनेक नाट्य रूपों का सृजन किया है । कारंतजी के यक्षगान ब्याले उनकी सृजन प्रतिभा के साक्षी हैं जिनमें यक्षगान का ही उपयोग करके ब्याले का सृजन करने का प्रयत्न किया है । इस प्रकार कारंतजी ने यक्षगान लोकनाट्य को जीवन्त कला के रूप में हिफ़ाजत करने, उसे संवारने और उसे विकास के पथ पर ले जाने की दिशा में बहुत प्रयत्न किया है ।

उपन्यास लेखन एवं यक्षगान कारंतजी के व्यक्तित्व के दो पहलू हैं । इनकी ख्याति इन दोनों क्षेत्रों में असंदिग्ध है ही । इनके अलावा साहित्य की अन्य विधाओं में भी कारंतजी की साधना कम महत्व की नहीं है । इनका शब्दकोश आज भी अपना महत्व रखता है । यात्रा-साहित्य की श्रीवृद्धि में कारंतजी के योगदान को नज़रंदाज नहीं किया जा सकता है । आलोचक कारंतजी की मान्यताएँ निश्चय ही नई दिशाओं का उद्घाटन करती हैं । बाल साहित्य के निर्माण में भी इन्होंने विशेष दिलचस्पी लेकर हमारे बच्चों को ज्ञानवर्धक साहित्य प्रदान किया है । कारंतजी की साधनाओं के संबन्ध में क्या लिखा जाए, क्या छोड़ा जाय-यही एक मात्र समस्या है ।

डॉ. शिवराम कारंत किसी भी भाषा के लिए सिरमौर हैं । इनकी हर रचना का अनुवाद विश्व की विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध होगा तो कितना अच्छा होगा। निस्संदेह उस भाषा का गौरव बढ़ेगा । चिंतन-मन्थन के लिए उतनी सामग्री है इनकी रचनाओं में । कारतंजी की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती है । करातंजी, वस कारंतजी हैं ।

30.4 मास्ति वेंकटेश अय्यंगार

30.4.1 व्यक्तित्व विवेचन

डॉ. मास्तिवेंकटेश अय्यंगार 'श्रीनिवास' (सन् 1891-1986) आधुनिक कन्नड साहित्य के शीर्षस्थ साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने इस शताब्दी के कन्नड साहित्य को अपनी सृजनात्मक प्रतिभा से समृद्ध बनाया है । कन्नड कथा साहित्य के जनक यानी प्रवर्तक के रूप में असंदिग्ध रूप से मास्ति का नाम आदर के साथ लिया जाता है। अलावा इसके कविता, महाकाव्य, उपन्यास, नाटक, आलोचना, आत्मकथा लेखक के रूप में मास्ति ने कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि की है, अपने अनुवादों के द्वारा अंग्रेजी के शेक्सपियर की नाटक-संपदा से कन्नड भाषियों को परिचय कराया है, संपादक की है सियत से अपनी साहित्यिक पत्रिका 'जीवन' के माध्यम से लोकमानस को साहित्यिक एवं वैचारिक धरातल पर चिंतन करने को भरपूर सामग्री दी है । मास्तिजी ने इस प्रकार साहित्य की जिस किसी भी विधा में कलम चलाई उस विधा को जीवन। दान दिया, हरा-भरा किया । अदम्य मानवप्रेम, जीवन के प्रति अपार आस्था, उदार मानवीय दृष्टि से ओतप्रोत इनकी रचनाएँ मानवीयता को उच्च भावभूमि पर स्थापित करती हैं। भारतीय संस्कृति के चारण के रूप में मास्ति का व्यक्तित्व और कृतित्व देदीप्यमान है।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार का जन्म कर्नाटक के कोलार जिले के मास्ति नामक गाँव में 5 जून 1891 को एक गरीब परिवार में हुआ । पिताजी इतने गरीब थे कि वे बच्चों को पढा लिखा तक नहीं सकते थे । उनका जीवन हरदिन संघर्ष से गुजरा करता था । ऐसी हालत में मास्तिजी की आरंभिक शिक्षा उनके दादा और चाचा के यहाँ हुई, फिर उच्च शिक्षा के लिए मैसूर आए तो यहाँ हफ्ते के सातों दिन सात घरों में भोजन का प्रबंध करके शिक्षा पाने लगे । गरीबी और अभाव के जीवन से मास्तिजी बचपन से परिचित थे और देहात से आने के कारण वहाँ की संस्कृति, वहाँ की परंपरा एवं जीवन विधान से साक्षात्कार करचुके थे ।

मास्तिजी का बचपन अवश्य गरीबी में बीता किन्तु वे प्रखर बुद्धिमान थे, प्रतिभावान थे । उन दिनों की मेट्रिक परीक्षा में प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे । तदनंतर मैसूर और बेंगलूर में स्नातक शिक्षा पास करने के बाद अंग्रेजी में एम.ए.

करने के लिए मद्रास प्रेसिडेन्सि कालेज में शामिल हुए । वहाँ एम.ए. परिक्षा प्रथमश्रेणी सहित सर्वप्रथम आकर स्वर्णपदक पाने का श्रेय इनका है । मैसूर सिविउ सर्वीस परीक्षा में भी सर्वप्रथम रेंक लेकर 200 रूपये के वेतन पर असिस्टेंट कमीशनर बने उस पद से उत्तरोत्तर पदोन्नति पाते हुए सरकार के प्रधान सचिव पद पर आसीन हुए । सरकारी सेवा के दौरान मास्ति ने पूरे कर्नाटक की यात्र की और तद्धारा उन्होंने जिस प्रकार कर्नाटक की भव्य परंपरा, संस्कृति एवं यहाँ के जीवन विधानों का निकट से परिचय प्राप्त किया, उसी प्रकार लोगों की गरीबी, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, उनके गुण-दोषों को देखा, उनके दुःख से दुःखी हुए, उनके संतोष में से सुखी हुए । इस प्रकार मास्ति ने शासकीय सेवा करते करते साहित्य सेवा से मुक्ति तो मिली किन्तु साहित्य सेवा अंतिम साँस तक करते रहे । मास्ति ने अपने उदार व्यक्तित्व और सुगंधित कृतित्व से इन दोनों क्षेत्रों को समृद्ध किया ।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार की मातृभाषा तमिल थी, अंग्रेजी का उन्होंने गहरा अध्ययन किया, कन्नड भाषा में लिखा, इतना लिखा कि मास्ति को कन्नड की संपत्ति के रूप में जनता आदर करती है । मास्ति के बिना आधुनिक कन्नड साहित्य की कल्पना करना असंभव है ।

30.4.2 कृतित्व विश्लेषण

मास्ति कवि के रूप में कन्नड साहित्य लोक में आए । उनका सर्वप्रथम काव्य संकलन 'बिन्नह' 1922 में प्रकाशित हुआ था । तत्पश्चात, उनके ग्यारह काव्य संकलन-अरूण, तावरे, चेलुवु, मलारा, गौडर मल्ली आदि-प्रकाशित हुए हैं । 'नवरात्री' मास्तिजी का एक विशिष्ट कथा-काव्य संग्रह है जो पाँच भागों में संग्रहित है जिनमें कुल मिलाकर 19 कथाकाव्य हैं । इन कथात्मक काव्यों की वस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक और समकालीन व्यक्तियों की जीवन गाथा पर आधारित है। इन कथाकाव्यों की शैली अनूठी है, प्रतिपाद्य वस्तु मानवीय मूल्यों पर आधारित है । मास्ति के काव्यजीवन की चरम परिणति है उनका महाकाव्य 'श्रीराम पट्टाभिशेक' जिसका प्रकाशन 1972 में हुआ । 'श्रीराम पट्टाभिशेक' महाकाव्य में रामायण महाकाव्य का पुनरसृजन आधुनिक संदर्भ में हुआ है । यहाँ राम को

अवतार के रूप में नहीं अपितु मानव के रूप में देखने का प्रयत्न किया गया है । वैसे यह काव्य वाल्मीकि रामायण के प्रति ऋणी है तथापि वहाँ की घटनाओं और प्रसंगों को नए आयाम प्रदान करने का प्रयास इस काव्य में है । लगभग दस हज़ार पंक्तियों का यह काहकाव्य मास्ति की तपस्या एवं जीवन दृष्टि का अच्छा परिचय देता है ।

मास्ति कन्नड नवोदय काव्यधारा के प्रमुख कवियों में से है जिन्होंने तब लिखना शुरू किया था जबकि बी. एम. श्रीकठंय्याजी का 'इंग्लिश गीतेगळु' की कविताएँ कन्नड काव्य को नया आयाम और नई संवेदनाएँ दे रही थीं । मास्ति उन्हीं दिनों अपने सानेटों, गीतों, कविताओं और कथाकाव्यों के द्वारा अध्यात्मिक अनुभूतियों और मानवलावादी चिंतन के स्वर दिया। सानेट एवं मुक्त छंद का कविता में प्रयोग पहली बार करने का श्रेय इन्हीं को दिया जाता है।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार कन्नड़ कहानी साहित्य के जनक, आद्य कथाकार माने जाते हैं । इनकी लिखी एक सौ से अधिक कहानियाँ कन्नड की अपुर्व धरोहर हैं । अपनी पहली कहानी 'रंगप्पन मदुवे' और अंतिम कहानी 'मायण्णन कन्नडि' है । अपनी इन तमाम कहानियों में मास्ति ने जीवन के सैकडों अनुभवों को और मानव स्वाभाव के सहस्त्र आयामों को दर्शाया हैं । व्यक्तिगत जीवन का हर्ष-विषाद जैसे अनावृत्त हुआ है वैसे ही राष्ट्रजीवन के अतीत और वर्तमान का अनुसंधान भी हुआ है । सामाजिक जीवन की त्रासदियों का मानवीय धरातल पर चित्रित करना मास्तिजी की कथाशैली की अपनी विशेषता है । जैसे प्रेमचन्द की कहानियाँ 'मानसरोवर' के आठ भागों में संकलित हैं वैसे मास्ति की कहानियाँ 'सण्ण कथेगळु' शीर्षक के 13 भागों में संकलित हैं । केन्द्र साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी इन्हें इनकी कहानियों के एक संग्रह पर ही मिला है ।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार कन्नड के प्रमुख उपन्यासकार भी रहे हैं । उपन्यासकार के नाते इनका विशेष मोह इतिहास के सुनहले पृष्ठों की और रहा है । 'सुब्बण्णा' मास्ति का लघु उपन्यास है जो कि अपने दिनों में पाठकों की चुंबक शक्ति बना था। मास्ति के दो उपन्यास हैं - 'चेन्नबसव नायक' और 'चिक्कवीर राजेन्द्र' जोकि दोनों ऐतिहासिक उपन्यास हैं । 'चेन्नबसवनायक' 18 वीं शती में हुए दक्षिण भारत के

बिदनूर राजवंश के चेन्नबसव नायक के जीवन पर आधारित है तो दूसरा उपन्यास 'चिक्कवीर राजेन्द्र' 19वीं शती के कोडगु रियासत के अंतिमराजा पर आधारित है । मास्ति के ये दोनों उपन्यास काफ़ी चर्चित हुए और कई प्रकार के वाद-विवादों के केन्द्र भी रहे ।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार कन्नड के एक सशक्त नाटककार भी हैं उनकी सृजनधर्मिता की अभिव्यक्ति नाटकों के माध्यम से प्रभावकारी ढंग से हुई है । मास्ति अपने साहित्यिक जीवन के आरंभिक दिनों से ही नाटक रचना के प्रति आस्थावादी रहे। इनके 13 नाटक कन्नड में प्रकाशित, हुए हैं - शांता, सावित्रि, उषा, ताळिकोट, शिवछत्रपति, काकनकोटे पुरंदरदास, भट्टर मगळु आदि।

'यशोधरा' - आधुनिक कन्नड का एक श्रेष्ठ गीत नाटक है जोकि मास्ति के नाटकों में ही नहीं अपितु कन्नड की नाटक संपदा में सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं चर्चित नाटक है। प्रस्तुत गीत नाटक में यशोधरा के उस महानचरित्र का उद्घाटन हुआ है जोकि पति के वियोग के दारूण दुख का शिकार है, उसका बेटा राहुल ही उसका आधार है । राहुल की छाया में यह वियोगिनी अपने दुख को हल्का कर रही है । दूसरी ओर दस वर्षो के अंतराल के बाद जब सिद्धार्थ बुद्धत्व प्राप्त करके लोकोपदेश के लिए कपिलवस्तु आते हैं तो उसके दर्शन के लिए शहर का शहर भागता है मगर यशोधरा जो स्वाभिमान की जीवंतमूर्ति है, अभिमान का भंडार है नारी सहज कुतूहल, आतुरता और चंचलता के वश में आकर अपने पति के दर्शन करने नहीं जाती है, बदले में वह इस आशा से राजमहल में ही रहती है कि भगवान बुद्ध स्वयं उनके पास आएँ । बुद्ध स्वयं यशोधरा के पास आकर नारी का गौरव बढाते हैं । उसका सम्मान करते हैं । यशोधरा के सवालों के सामने तथागत निरूत्तर होते हैं और अंत में राहुल के साथ उसे भी संघ की सदस्या बनने की अनुमति देते हैं । यह नाटक निश्चय ही मास्ति के सफल नाटकों में से है जोकि मुक्त छंद की प्रवाहमयी शैली में है । इस नाटक की तुलना गुप्ताजी की 'यशोधरा' से की जा सकती है । इन दोनों महाकवियों से चित्रित यशोधरा में अद्भुत समानता है। 'ताळिकोटे' और 'काकनकोटे' मास्तिजी के एक सशक्त नाटक हैं । इनके अन्य नाटकों में 'पुरदरदास', 'कनकण्णा' रेडियो नाटक हैं जिनमें इन जो महान कवि सुधारकों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने

का प्रयत्न है । 'भट्टर मगळु' एक सामाजिक नाटक है जिसमें जीवन के विद्रूपों एवं मानवीय अनुभूतियो का मार्मिक चित्रण है । इनके आरंभिक नाटकों मे शांता, सावित्रि, उषा उल्लेखनीय हैं जोकि पौराणिक प्रसंगों पर आधारित हैं ।

इसी प्रसंग पर इस बात का विशेष उल्लेख करना चाहिए कि मास्ति ने अंग्रेजी के मशहूर नाटककार शेक्सपियर के 'हेमलेट', 'टेम्पेस्ट', 'ट्वेलफत्-नाइट', किंग लियर नाटकों का सफल अनुवाद प्रस्तुत किया और साथ ही शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटकों के कई मनोज्ञ प्रसंगों का अलग अलग अनुवाद करके 'शेक्सपियर दृश्यगळु' के नाम से तीन भागों में प्रकाशित किया है । इस प्रकार शेक्सपियर का कन्नड पाठकों को पहली बार परिचय कराने का श्रेय मास्ति को है । मास्ति ने रवीन्द्र के 'चित्रांगदा' काव्य का भी अनुवाद किया है ।

मास्ति वेंकटेशय्यंगार कन्नड के मूर्धन्य आलोचकों में से हैं । इन्होंने अपने लेखकीय जीवन की शुखआत से सृजनात्मक एवं आलोचनात्मक लेखन की और समान रूप से ध्यान दिया । मास्ति के कृतित्व में कवि एवं आलोचक का अद्वितीय संगम है ।

मास्ति का आलोचना-क्षेत्र बडा विस्तार है । साहित्यलोचन के सिद्धांतों पर गंभीर और गहरा चिंतन करने के साथ-साथ भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथों पर कई समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे हैं जो आज भी इस विधा के संदर्भ ग्रंथ माने जाते हैं । साहित्यशास्त्र परचिंतन, प्राचीन भारतीय साहित्य का मंथन, प्राचीन कन्नड कवियों और उनकी कृतियों की आलोचना, कन्नड लोक साहित्य का विवेचन, आधुनिक कन्नड कवियों एवं कृतियों पर समीक्षा, भारतीय एवं विश्वसाहित्य की कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन आदि मास्ति के चिंतनपक्ष को उजागर करनेवाले ग्रंत हैं । मास्ति के आलोचनात्मक ग्रंथों में 'आदि कवि वाल्मीकि' का अपना विशिष्ट स्थान है जिसमें मास्ति का प्रौढ चिंतन और सूक्ष्म आलोचनात्मक प्रतिभा को देख सकते हैं । वाल्मीकि की काव्य प्रतिभा एवं रामायण के महत्व को समझने के लिए मास्ति ने नई दृष्टि दी है । इनका 'भारत तीर्थ' महाभारत पर लिखा ग्रंथ है जिसमें महाभारत पर उनकी गंभीर अध्ययन है । प्राचीन कन्नड साहित्य के मनीषियों में पंप, कुमारव्यास, लक्ष्मीश, बसवेश्वर, सर्वज्ञ आदि लगभग सभी महत्वपूर्ण

कवियों पर और आधुनिक साहित्य के बी. एम्. श्रीकंठय्या, द. रा. बेन्द्रे, बेटेगेरी कृष्णशर्मा, पु. ति. नरसिंहाचार्य, कुवेंपु - लेखकों की पुस्तकों के लिए लिखी भूमिकाएँ आज भी दस्तावेज के रूप में हैं । इनके लिखे अन्य आलोचनात्मक ग्रंथ हैं - साहित्य, कर्नाटकद जनतेय संस्कृति कर्नाटकद जनपद साहित्य आदि । समय-समय पर इनके आलोचनात्मक निबंध 'विमर्शे' शीर्षक से चार भागों, में प्रकाशित हैं ।

मास्ति लंबे समय तक 'जीवन' नामक साहित्यिक पत्रिका चला रहे थे जोकि अपने समय की एक प्रतिष्ठित पत्रिका थी। उसमें प्रकाशित संपादकीय लेख कर्नाटक और भारत के संस्कृतिक जीवन के दास्तावेज हैं ।

मास्ति कन्नड के अनूठे गद्यकार हैं, गद्यशैली के निर्माता हैं । इनकी लिखी गद्यरचनाओं की अपनी शैली है तो 'भाव' नामक आत्मकथा जोकि 1350 पृष्ठों का है जिसका कन्नड आत्मकथात्मक साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है । यह मात्र आत्मकथा नहीं है, महाकवि एवं महान गद्यकार की जीवन-संघर्षगाथा नहीं है, अपितु इस शताब्दी का सांस्कृतिक इतिहास भी है ।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार राज्य और राष्ट्रस्तर पर कई बार सम्मानित हुए हैं । कई विद्वत्गोष्ठियों के सभापति रह चुके हैं । कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी रहे हैं । केन्द्र साहित्य अकादमी ने 'फेलो' बनाकर सम्मान किया है । केन्द्र साहित्य आकादमी का पुरस्कार इनके कथासंग्रह पर प्राप्त हुआ है । इन सबसे बढ़कर भारतीय ज्ञानपीठ ने अपने सर्वोच्च पुरस्कार से मास्ति का सम्मान किया है । मास्ति कन्नड के शिखर साहित्यकार हैं जिनका योगदान न केवल कन्नड को अर्पितु भारतीय साहित्य को अनुपम रहा है ।

30.5 निष्कर्ष

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से यह परिलक्षित होता है कि मास्ति कन्नड के अनूठे गद्यकार हैं तो कारंत भी प्रमुख हस्ताक्षर हैं । दोनों कन्नड के महान चिंतक आलोचक भी हैं । कारंतजी किसी वाद विशेष के झमेले में नहीं पडनेवाले थे अतः

फायड तथा मार्क्स के चंगुल में पडकर उनका कलाकार कभी पथभ्रष्ट नहीं हुआ है । जीवन को उन्होंने चिंतनशील, संवेदनशील व्यक्ति की दृष्टि से देखा है। वे सच्चे अर्थ में मानवतावादी लेखक थे । मास्तिजी की रचनाओं में परिणामान्विति दिखाई देती है । अतः उनकी अधिकांश रचनाएँ परिणाम में रमणीय बनी हैं। मास्तिजी की सबसे बडी विशेषता है कि सरलतम भाषा में प्रबलतम भावों को भरने की शक्ति सुकुमार से सुकुमार भावों को साकार करने की अद्‌भुत कला। इस तरह मास्ति और कारंत से टक्कर लेनेवाले कलाकार भारतीय भाषाओं में कम ही मिलेंगे ।

30.6 बोध प्रश्न

1. डा. शिवराम कारंत जी की साहित्य-साधना पर प्रकाश डालिए ।
2. मास्ति वेंकटेश अय्यंगार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषण कीजिए ।
3. कन्नड कथा-साहित्य को समृद्ध बनाने में शिवारम कारंत और मास्ति वेंकटेश अय्यंगार का क्य आयोगदान है ? विवेचन कीजिए ।

30.7 नमूने का उत्र

प्र : डा. शिवराम कारंतजी की साहित्य-साधना पर प्रकाश डालिए ।

उत्तर : १९७८ कर्नाटक की जनता के लिए बेहद खुशी का वर्ष है । कन्नड़ भाषा एवं साहित्य की विजयपताका अखिल भारत के स्तर पर फहराकर कन्नड़ भाषी अतीव संतोष का विजयोत्सव मना चुके हैं । कन्नड़ भाषा-साहित्य की समृद्ध परंपरा और यहाँ की क्रियशीलता का प्रमाण उस बात में है कि तीसरी बार ज्ञानपीठ पुरस्कार कन्नड़ के एक और महान साहित्यकार को प्राप्त हुआ है, सो भी पूरे एक लाख रूपये का।

१९७७ के ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता डॉ. शिवराम कारंतजी कन्नड़ के मूर्धन्य साहित्यकार हैं जिनके उपन्यास "मूकज्जिय कनसुगळु" पर यह सर्वोच्च पुरस्कार मिला है, वास्तव में इस पुरस्कार को उनकी समग्र साधना के संदर्भ में मानना अत्यंत उचित होगा।

कन्नड़ भाषा को विशिष्ट शक्ति प्रदान करने और इस भाषा के साहित्य को समृद्ध बनाने की दिशा में कारंतजी इस शती के आरंभिक दशकों से जो सेवा करते आ रहे हैं, उसके लिए ज्ञानपीठ का पुरस्कार कभी मिल जाना चाहिए था । यद्यपि बहुतों के संबंध में यह कहते सुनते हैं कि फलाना व्यक्ति व्यक्ति नहीं संस्था है मगर कारंतजी के संबंध में तो सौ फी सदी यह उक्ति सार्थक और सही है । कालेज की शिक्षा से वंचित रहने पर भी अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के फलस्वरूप उन्होंने जीवन के सौ अनुभवों से साक्षात्कार किया, जगत के हजारों विषयों को पढ़ा, देखा, चिन्तन मन्थन किया, तत्परिणाम स्वरूप जो कुछ पाया उसे निर्वचना से दिया । इस दृष्टि से कारंत - साहित्य वास्तव में कल्पना की ऊँची उड़ान भरनेवाला साहित्य नहीं अपितु जीवन से घनिष्ठता रखनेवाला, कला को जीवन से संबद्ध करनेवाला साहित्य है । कारंतजी का अपने लोगों से, अपने समाज एवं देश से इतना प्यार रहा है कि अपने परिवेश को अज्ञान से, निरक्षरता के अभिशाप से मुक्त करने का आरंभ से प्रयत्न उन्होंने किया है। समाज को सचेतन एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान विचार बोध से परिचित कराने के उद्देश्य से अपने हज़ारों कष्टों के बावजूद जीवन भर निरंतर अपने को समर्पित करते आ रहे हैं । यह निश्चय ही अद्‌भुत आश्चर्य की बात रही है कि 'बाल प्रपंच' और 'विज्ञान प्रपंच' के अनेक खण्डों को अकेले के प्रयत्न के द्वारा विश्व के ज्ञान एवं विज्ञान के कुतूहल संसार को कन्नड़ के लाखों पाठकों के सम्मुख पेश करते समय कारंतजी ने जिन कष्टों का सामना किया, जिस मानसिक तनाव का अनुभव किया और कहाँ-कहाँ क्या-क्या पढ़ा-इन सब पर यदि चर्चा चिढ जाए तो लगता है मानों यह सब चमत्कार है । मगर यह कोई चमत्कार नहीं अपितु कारंतजी के 'भीमबल' का ज्वलंत प्रमाण है, उनकी साहसिक प्रवृत्ति के संकेत के रूप में यह सब है । 'बाल प्रपंच' और 'विज्ञान प्रपंच' आज भी इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं । कर्नाटक में हीं अपितु इस विश्व के सम्मुख कारंतजी एक जंगम ज्ञानपीठ के बराबर हैं ।

शिक्षा के क्षेत्र में नये-नये प्रयोंगों के द्वारा बच्चों और अध्यापकोंको परंपरागत शिक्षा प्रणाली से मुक्त करने और सिखाने की नयी प्रणालियों पर विस्तार से विचार करने के उद्देश्य से कारंतजी ने अपनी व्यक्तिगत हैसियत से पुत्तूर में एक प्रायोगिक स्कूल खोला जिसका नाम रखा 'बालवन' । अपने स्कूल के बच्चों के

उपयोगार्थ उन्होंने अपना ही एक प्राणी-संग्रहालय और एकं मिनि रेल का इंतजाम किया । बालवन बच्चों के मनोविकास का सुमधुर केंद्र के रूप में प्रतिष्ठापित हुआ। कन्नड़ भाषियों ने डॉ. शिवराम कारंतजी को बड़े आदर से 'कडल तीरद (समुद्रतटिय) भार्गव' कहा है जो न केवल उनके जन्मस्थल की ओर निर्देश करता है किंतु किसी भी अन्याय, अत्याचार, शोषण से और यहाँ तक कि बेतुके विचारों से सफासट अपने विरोध एवं रोष को प्रकट करनेवाले उनके स्वभावगत गुण की ओर भी यह विशेषण संकेत करता है।

डॉ. कारंतजी का जन्म कर्नाटक राज्य के उडुपि के पास के एक गांव कोट के ब्राह्मण परिवार में हुआ । कोटा ब्राह्मणों के जैसे शुद्ध ब्राह्मण नहीं हैं - यह उन दिनों कहावत जैसी प्रचलित बात थी । इस 'कोटा' परिवार में जन्मे कारतंजी मात्र कोटा के ही न रहकर अखिल भारत के हुए - यह उनकी साधना की उपलब्धि है । इनके पिताजी स्कूल मास्टर थे जिन्होंने उन दिनों अठन्नी के वेतन पर अपना व्यवसाय शुरू किया था । कारंत जब कि कालेज में पढ़ रहे थे तब राष्ट्र के नाम पर गाँधीजी के आह्वान से देश के हजारों युवकों के जैसे कारंत जी ने भी कालेज की पढ़ाई को तिलांजलि देकर राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य यज्ञ में सक्रिय भाग लिया । पराधीन भारत की दुर्गति से बेचैन होकर आजादी की लड़ाई में अपने को उत्सर्ग किया । गाँधीजी के सिद्धांतों को गांवों में जाकर द्वार द्वार प्रचारित करने का कार्य किया । देश के राजनीतिक क्षेत्र ने कारंतजी को आकर्षित तो किया मगर कारंतजी उस क्षेत्र के ही न रह गए । अपने यौवन काल में रामकृष्ण, विवेकानन्द जैसे महान विभूतियों से जिस प्रकार प्रभावित हुए उसी प्रकार गाँधीजी के सामाजिक सिद्धांतों से भी आकृष्ट हुए । मानव मानव के बीच की खाई की ओर निर्देश करते हुए गांधीजी के इस सवाल ने कि 'कुत्ते को छू सकते हो ? मनुष्य को क्यों नहीं ?' कारंतजी को अभिभूत कर दिया । गाँधीजी के विचारों से प्रभावित होकर कारंतजी ने उनके रचनात्मक कार्यों में विशेष दिलचस्पी लेकर उनके प्रसार में महत्वपूर्ण सहयोग दिया । व्यक्ति और समाज के पीछे पड़कर इन दोनों को नया अलोक प्रदान करने के लिए कारतंजी ने क्या-क्या नहीं किया ! भाषण दिये, सुधारवादी दृष्टिकोण से उपन्यास लिखे ।

डॉ. कारतंजी अपनी स्पष्टवादिता एवं निर्भीकता के लिए अत्यंत प्रसिद्ध हैं । व्यक्ति कोई भी रहे और परिस्थिति कैसी भी रहे, किसी की परवाह लिए बिना अपने मन के विचारों को बिना किसी झिझक के बता देना इनकी सहज प्रवृत्ति रही है । यहाँ तक कि गाँधीजी से मतभेद रखने और उनकी विचारधारा से बिलकुल अलग रूख अपनानेवाले कारंतजी एक दृष्टि से गाँधीजी से भी आगे हैं । एक बार ऐसा हुआ कि वेश्या परिवार की एक कन्या की शादी करवाने के लिए कारंतजी ने जमीन-आसमान एक किया पर उसमें उन्हें आसानी से सफलता नहीं मिली तो उन्होंने गांधीजी के नाम एक पत्र लिखकर उनकी सलाह मांगी तो गांधीजी से यह सलाह आयी कि ऐसी लडकियाँ आजीवन पर्यंत ब्रह्मचर्या का पालन करें । गाँधीजी की इस सलाह से कारतंजी इतने विचलित हुए कि बड़ी मुश्किल से एक लड़के की तलाश करके उस लडकी की शादी संपन्न कराये । यह एक मिसाल है। कारंतजी की मानवीय भावना की शीतल छाया में तृप्ति की साँस ले रहे प्रसंग आने और कितने रहे होंगे !

अन्याय, अत्याचार, शोषण, निरंकुशता का बोलबाला जहाँ कहीं रहा उसका कारंतजी ने सदैव विरोध किया है - अपनी व्यक्तिगत मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा के मोल पर । देश भर में पिछले वर्षों जब कि आपात्कालीन स्थिति घोषित हुई, नागरिक के मूल अधिकार जब्त हुए और देश में निरंकुशता अपनी चरमसीमा तक पहुँच गई तो कारंत ने उसका खुल्लमखुल्ला विरोध किया, यहाँ तक कि हिन्दी के साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु तथा अन्य इनेगिने लेखकों की भांति इन्होंने भी भारत सरकार से प्रदत्त "पद्म भूषण" उपाधि निस्संकोच लौटाकर लेखकीय ईमानदारी की रक्षा की । और १९७७ के चुनावों में इन्हीं मानवीय मूल्यों को देश भर में प्रतिष्ठापित करने के लिए अपनी आवाज़ उठायी ।

कारंतजी का तो बावरा मन है । उनकी आत्मकथा वाली पुस्तक का शीर्षक है "हुच्चु मनस्सिन हत्तु मुखगळु" (बावरे मन के दस चेहरे) । सच पूछा जाय तो यह निश्चय ही बावरे हैं । यदि बावरे न होते तो इतना सब क्यों करते । इतना सब क्यों सहते आखिर दुनिया भर के विषयों में आसक्त होकर उन सबको अपनाने और सबको अपना कुछ देने की उत्कटता ने इनको चैन की नींद नहीं दी । अपने इस

बावरेपन के संबन्ध में स्वयं कारंतजी का कहना है कि 'विष्णु के दस अवतार हैं तो मेरे ध्येयों को सोलह अवतार लेना पड़ा । राष्ट्रभक्ति, स्वदेशी व्यापार, पत्रकारिता, अध्यात्म साधना, कला के भिन्न-भिन्न रूपों का अध्ययन यथफोंटोग्रफी, नाटक, नृत्य, चित्र, वास्तुशिल्प, संगीत, सिनेमा, इतना ही नहीं समाजसुधार, ग्रामोद्धार, शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग आदि अवतार हो चुके हैं । इसके बाद पुस्तकें लिखने से लेकर छापने और उन्हें बेचने तक सब कुछ किया है । स्वतंत्र जीवन से गुरू, कवि, सन्यास जीवन से होते हुए पारिवारिक जीवन से भी गुज़रा हूँ । "

उपरोक्त सभी क्षेत्रों में कारंतजी ने पूरी लगन के साथ साधना करके जो हासिल किया है वह सचमुच तत्संबन्धी क्षेत्र की उपलब्धि है । कारंतजी की किसी भी देन को नजरंदाजी से नही देखा जा सकता है क्योंकि कारंतजी का गंभीर, अध्ययन, चिंतन-मन्थन का सार उनकी हर साधना में रहता है ।

30.2.2 कृतित्व विश्लेषण

कारंतजी ने हालंकि साहित्य की हर विधा पर कलम चलायी है फिर भी उपन्यासकार और यक्षगान - लोकनाटय के विद्वान एवं कलाकार के रूप में इनकी अत्यधिक ख्याति है । अपने साहित्यिक जीवन के आरंभिक दिनों में जासूसी और 'देवदूतरू' जैसे विडम्बनात्मक उपन्यास की रचना की थी पर जब कि उन्होंने "चोमनदुडि" लिखा तब कारंत युवक थे - करीब ३० वर्ष के । मगर उपन्यास क्षेत्र में गम्भीर रूप से प्रवृत्त होकर लिखने का कार्य उन्होंने 'मरळि मण्णिगे' से किया। तब तक इनके जीवन के दर्शन में स्पष्टता आयी थी । जीवन के नाना क्षेत्रों में पाये गए, भोगे गए सुख दुख, मानव स्वभाव की नाना परतों को अत्यन्त निकट से देखकर प्राप्त अनुभव और लोकजीवन के विभिन्न स्तरों पर हासिल किए गए विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों ने कारंतजी को मनुष्य एवं मनुष्य की जिन्दगी के संबन्ध में, समाज और देश के संबन्ध में एक प्राकार से अपूर्व शक्ति प्रदान की थी। अपने जीवन में देखे एवं भोगे गए क्षण कारंतजी को कभी हल्के नहीं लगे । वैसे कारंतजी के लिए कोई भी विचार हल्का नहीं है । हर अनुभव का अपना महत्व है । यही कारण है कि कारंतजी की औपन्यासिक कृतियों में समस्याओं का गंभीर

विवेचन रहता है । मानव मन का गहन विश्लेषण सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तर तक वह करते जाते हैं । अर्थात् कारंतजी के उपन्यासों में वैचारिकता का पुट अधिक है । परिणाम-स्वरूप अपने विचारों को कलात्मक दृष्टि से सजाने की ओर इन्होंने उतना महत्व नहीं दिया । स्वयं कारंतजी के अनुसार विचारों की सजावट की तरफ जब कि साहित्यकार का ध्यान जाता है तो आत्म भिव्यक्ति में अड़चन होगी । इस दृष्टि से कारंत जी की रचनाओं में शिल्प एवं तन्त्र के बजाय विचारों को प्रमुख स्थान मिला है । यही कारण है कि उनके उपन्यास प्रौढ़ एवं प्रबुद्ध पाठकों को जिस प्रकार पसंद आते हैं उसस प्रकार साधारण पाठक एवं सामन्य विद्यार्थियों और घर बैठे समय बिताने के उद्देश्य से पढ़नेवाली देश की हजारों महिला पाठिकाओं के लिए कारंतजी का उपन्यास 'बोर' लगते हैं । इन उपन्यासों के पन्न-पन्ने में सस्ता मनोरंजन या हल्की बाजारू कथावस्तु के बजाय वास्तविकता की भूमि पर जीनेवाले लाखों मनुष्यों की लाखों पीड़ाओं का दस्तावेज बिखरा रहता है । आम आदमी के जीवन के संघर्षों का, उनके स्वभाव का यथार्थत चित्रण इनके उपन्यासों का मुख्यबिन्दु है। 'जिन्दगी से मुझे प्यार हैं, कहनेवाले कारंतजी की दृष्टि मनुष्य के क्रिया-कलापों पर, उसकी करनी पर केंद्रीकृत रही है । मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना के लिए जीवन भर जूझते आ रहे कारंत के उपन्यासों को कथन शैली के लिए नहीं अपितु विचारों के लिए पढ़ा जाना आवश्यक है।

डॉ. कारंतजी के लिखे उपन्यासों की सख्या २५ से भी ज्यादा है । इन सभी उपन्यासों की कथावस्तु एवं समस्याएँ मानव जीवन के नाना पहलुओं पर आधारित हैं । चोमनदुडि, सरसम्मन समाधि, मरळि मण्णिगे, अळिदमेले, बेट्टदजीव, कुडियर कूसु, शनीश्वरन नेरळिनल्लि, समीक्षे, आळ निराळ, नंबिदवर नाक, नरक, स्वप्नदहोळे, चिगुरिद कनसु, इद्दरू चिन्ते, मै मनगळ सुळियल्लि, मूकज्जिय कनसुगळु - आदि उनके उपन्यासों के शीर्षक हैं जिनमें कारतंजी ने मनुष्य जीवन के कुछ महत्वपूर्ण सवालों यथा उसके विश्वासों, द्वन्द्वों भ्रमों, आशा-आकाक्षाओं, जन्म-मरण लैगिक संबन्धों के लेकर कथासूत्र के आवरण में विशद चर्चा की है ।

'चोमनदुडि' कारंतजी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है जो कि आकार में छोटा है परंतु इसमें उठाई गई समस्या इतनी गम्भीर उन दिनों में थी भी जितनी

आज है । कारंतजी ने हरिजन समस्या के प्रति अपने साहित्यिक जीवन के आरंभिक दिनों में जितती पैनी दृष्टि से विचार किया है वह अपने में लाजवाब है। 'चोमनदुडि' में हरिजनों की करूण कहानी निरूपित है । हिन्दी के महान साहित्यकार प्रेमचन्द की महत्वपूर्ण उपलब्धि 'गोदान' की वस्तु भी दलितों की है । 'चोमनदुडि' का चोम और 'गोदान' के होरी में वैसे कोई अंतर नहीं है । इन दोनों का जीवन विधान एक सा है, दोनों की आकाँक्षाएँ एक सी हैं । चोम अपने जीवन में एक एकड़ जमीन का मालिक बनना चाहता है, दो बैल रखना चाहता है और ये दोनों अपनी कही जानेवाली जमीन के मालेक कहलाने की अंदरूनी आकांक्षा को देनेवाले दो असहायक हरिजनों की करूण एवं मर्मस्पर्शी कहानी है । और चोम के जीवन की ट्रेजडी यह है कि, जबकि 'गोदान' के होरी के पास उसके दुखदर्द में समान रूप से सहयोग देनेवाली पत्नी है मगर 'चोमनदुडि' का चोम नितान्त अकेला है । अपने इस अकेलेपन के कारण चोम का जीवन अत्यंत दारूण होता है । (होरी और चोम की संताने हैं जो अलग-अलग रास्ते अपनाते हैं, सो अलग बात है) मैं समझाता हूँ कि होरी से भी चोम का जीमन अत्यंत सजीव एवं यथार्थ बन पड़ा है । इन दोनों उपन्यासों पर अच्छा तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है ।

१९३३ में प्रकाशित 'चोमनदुडि' १९३५ में प्रकाशित मुल्कराज आनन्द का 'अनटचेबल' और प्रेमचन्द का 'गोदान' भारतीय साहित्यकारों से एक ही समस्या पर लिखे तीन महत्वपूर्ण उपन्यास हैं जो आज के संदर्भ में भी अपने महत्व को बनाए रखे हुए हैं।

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कारंतजी का उपन्यास 'मूकाज्जिय कनसुगळु' (गूँगी बुढिया के सपने) का कन्नड़ साहित्य में विशिष्ट स्थान है जिसमें मानव का इतिहास है, हमारे सांस्कृतिक इतिहास का दस्तावेज है, लैंगिक संबन्धों का विश्लेषण है, मनुष्य स्वभावों, उसके विश्वासों का विश्लेषण है । इस उपन्यास में चर्चित विचारों के संबन्ध में स्वयं कारतंजी का कहना है कि "इस उपन्यास का कोई कथानायक नहीं है, कथा नायिका नहीं है । मूकज्जी (गूँगी बुढ़िया) भी यहाँ की नायिका नहीं है । सांप्रदायिकता से जँग मन को थोड़ा सा गरम करके उसे पिघलाने का कार्य उसका है । यदि ऐसा संशय आ जाए कि कहीं ऐसी कोई बुढ़िया हो सकती

है तो ऐसा समझना बेहतर है कि हमारी संस्कृति के अनेकों विश्वासों के संबन्ध में अनुमान रूपी प्रेत का रूप ही वह है । तथापि हम में से अनेकों में प्रेत के रूप में नहीं प्रामाणिक संदेह के रूप में जीती आ रही है । उसके पोते सुब्बराय के जैसे रहनेवाले भी अनेक हैं ।"

'वह बुढ़िया, पोता - ये दोनों मिलकर चार पाँच हजारों वर्षों से चलती आ रही 'सृष्टि समस्या' का मन्थन करने का प्रयत्न यहाँ करते हैं ।अवास्तविक लगनेवाली बुढिया अपने वास्तविक ऐतिहासिक अंशों को अपनी आंतरिक दृष्टि से हमारे सामने प्रस्तुत करती है ।'

मूकज्जी इस उपन्यास की कथानायिका न सही मगर केंद्र बिन्दु है । सुब्राय और नारायण उसके दो पोते हैं । सुब्बराय की दृष्टि में बुढ़िया महान है, आदरणीय है, उसमें अंतदृष्टि है, अपने लोकानुभव के आधार पर मानव मन को समझती है और अपनी दृष्टि से व्याख्या करती है । जीवन और जगत के प्रति सुब्बराय के मन में कौतूहल और जिज्ञासा की दृष्टि पनपने के लिए यह बुढ़िया ही कारण है। एक तरफ सुब्बराय आधुनिक मन के द्वद्वों, जिज्ञासों का केंद्र है तो दूसरी तरफ इन सभी का समाधान करनेवाली मूकज्जी अनुभवों का आगार है । "मूकज्जिय कनसुगळु" का कन्नड़ उपन्यास साहित्य में विशिष्टस्थान उसकी इस वैचारिकता के कारण है ।

यक्षगान और कारंतजी

साहित्य के क्षेत्र में डॉ. कारतंजी को जो महत्वपूर्ण स्थान है वही स्थान यक्षगान लोकनाटय के क्षेत्र में भी है । यक्षगान और कारंतजी के बीच का रिश्ता कल परसो का नहीं अपितु अपने बचपन से इन्होंने इस कला के साथ घनिष्ट संबन्ध रखा है, याने पचास साल से भी ज्यादा असै से यक्षगान के प्रति इनकी रूचि रही है केवल रूचि मात्रा नहीं उस परंपरागत नाटयकला को सजिन्दा रखने के लिए और उसे नये नये आयाम देने के उद्धेश्य से कारंतजी ने अपने जीवन के बहु संख्यक वर्षों को व्यतीत किया है । संसार के अनेकों देशों में घूमकर वहाँ की नाटय पद्धतियों से, वहाँ की रंगभूमि, साहित्य, वर्ण, चित्रकला, सौन्दर्यशास्त्र के गंभीर अध्ययन और अपने अगाध अनुभव से यक्षगान की अपनी विशिष्टताओं की रक्षा करते हुए कारंतजी

ने जिन नाटय-रूपकों की रचना की है, उनसे न केवल कारंतजी को अपितु यक्षगान लोक नाट्य को विशेष आदर मिला है ।

यक्षगान लोक-नाट्य पर असंदिग्ध रूप से बोलनेवाले कुछ ही इने गिने साहित्यकारों में से कारतंजी का विशिष्ट स्थान है । १९३८ में, अमेरिका की 'एशिया' पत्रिका में और भारत की अनेक ख्यात पत्रिकाओं में यक्षगान के अनेक चित्रों के साथ लेख प्रकाशित किये । १९४५ में मैसूर और १९५५ में कर्नाटक विश्वविद्यानिलय में यक्षगान लोकनाट्य पर इनके दिये गए विद्वत्तापूर्ण भाषणों का परिवर्धित रूप ही 'यक्षगान बयलाट' नाम से ग्रँथ के रूप में प्रकाशित हुआ जिस पर स्वीड़त के कला संस्थान का पुरस्कार मिला और इसी ग्रंथ पर केंद्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला।

यक्षगान का पुनरूद्धार करने में डॉ. कारतंजी शुरू से क्रियाशील रहे हैं । १९४८ के बाद उन्होंने यक्षगान पर अनेक गोष्टियां चालाईं। यक्षगान संगीत के अनेक भूले बिसरे रागों का फिर से पुराने भागवतों की साहायता से ध्वनिमुद्रण किया। यक्षगान की अनेकों भाव-भगीमाओं और उसकी राग-रागीनियों के अनुकूल पड़नेवाले नये रागों का सृजन नये वाद्यों की सहयता से किया । यक्षगान की वेष-भूषा की अभिव्यक्ति के अनुकूल बनाने के लिए इनमें नयी चेतना भरी । कारंतजी के प्रयोगशील कृतित्व के कारण यक्षगान इधर अंतर-राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्टापित हो रहा है । कथक्कळी की भाँति यक्षगान भी रसिक जनों का ध्यान आकृष्ट कर रहा है ।

डॉ. कारतंजी की इस साधना के लम्बे मार्ग में आई अड़चनों की भी कमी नहीं है । १९६१में कारंतजी ने कुछ नृत्यरूपक बनाये तो उनको अनेक आक्षेपों का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कहा गया कि कारंत यक्षगान की हत्या कर रहे हैं। इन सबके बावजूद कारंतजी ने अपनी साहसिक प्रवृत्ति केंद्र स्थापित हुआ था वह नाना कारणों से स्थगित हुआ था । फिर १९७१ में संगीत नाटक अकादनी के तत्वावधान में मणिपाल अकादमी आफ एजुकेषन संस्था की सहायता से उडुपि में यक्षगान को नया आयाम दिया । भीष्मविजय, रतिकल्याण, कनकांगि आदि नवीन नृत्य रूपकों की संयोजना करके कर्नाटक के नाना भागों में ही नहीं अपितु

बाहर भी प्रदर्शित किया । कारंतजी के यक्षगान का रूप के स्वरूप यक्षगान के पारंपरिक नाटकों से भिन्न है । यक्षगान की मूल सामग्रियों का उपयोग करके कारंतजी ने अनेक नाट्य रूपों का सृजन किया है । कारंतजी के यक्षगान ब्याले उनकी सृजन प्रतिभा के साक्षी हैं जिनमें यक्षगान का ही उपयोग करके ब्याले का सृजन करने का प्रयत्न किया है । इस प्रकार कारंतजी ने यक्षगान लोकनाट्य को जीवन्त कला के रूप में हिफ़ाजत करने, उसे संवारने और उसे विकास के पथ पर ले जाने की दिशा में बहुत प्रयत्न किया है ।

उपन्यास लेखन एवं यक्षगान कारंतजी के व्यक्तित्व के दो पहलू हैं । इनकी ख्याति इन दोनों क्षेत्रों में असंदिग्ध है ही । इनके अलावा साहित्य की अन्य विधाओं में भी कारंतजी की साधना कम महत्व की नहीं है । इनका शब्दकोश आज भी अपना महत्व रखता है । यात्रा-साहित्य की श्रीवृद्धि में कारंतजी के योगदान को नज़रंदाज नहीं किया जा सकता है । आलोचक कारंतजी की मान्यताएँ निश्चय ही नई दिशाओं का उद्घाटन करती हैं । बाल साहित्य के निर्माण में भी इन्होंने विशेष दिलचस्पी लेकर हमारे बच्चों को ज्ञानवर्धक साहित्य प्रदान किया है । कारंतजी की साधनाओं के संबन्ध में क्या लिखा जाए, क्या छोड़ा जाय-यही एक मात्र समस्या है ।

डॉ. शिवराम कारंत किसी भी भाषा के लिए सिरमौर हैं । इनकी हर रचना का अनुवाद विश्व की विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध होगा तो कितना अच्छा होगा। निस्संदेह उस भाषा का गौरव बढ़ेगा । चिंतन-मन्थन के लिए उतनी सामग्री है इनकी रचनाओं में । कारतंजी की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती है । करातंजी, वस कारंतजी हैं ।

30.8 सहायक पुस्तकें

1. आधुनिक कन्नड साहित्य चरित्रे - एल. एस. शेषगिरिराव
2. साहित्य मत्तु समकालीन वास्तविकते - डा. एच. तिप्पेरूद्रस्वमी ।
3. कन्नड कादबंरी नडेदुबंद दारी - डा. शांतिनाथ देसाई ।

NOTES

इकाई 31
Unit 31
कन्नड की लेखिकाएँ

इकाई की रूपरेखा

31.0 - उद्देश्य

31.1 - प्रस्तावना

31.2 - कन्नड की लेखिकाओं का सर्वेक्षण

31.3 - एम के इन्दिरा

31.3.1 - विभिन्न प्रभाव

31.3.2 - साहित्य सृजन की प्रेरणा

31.3.3 - रचना संसार

31.3.4 - वैचारिकता

31.4 - त्रिवेणी

31.4.1 - रचनाएँ

31.4.2 - उपन्यास लेखिका त्रिवेणी

31.4.3 - कहानी और त्रिवेणी

31.4.4 - त्रिवेणी की लोकप्रियता

31.5 - निष्कर्ष

31.6 - बोधप्रश्न

31.7 - नमूने का उत्तर

31.8 - सहायक पुस्तकें

31.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में ' कन्नड की लेखिकाओं ' के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढने के बाद आप -

- कन्नड की प्रमुख लेखिकाओं का सर्वेक्षण कर सकेंगे।
- एम के इन्दिरा के व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त करेंगे।

- इन्दिराजी के साहित्य-सृजन एवं प्रेरणा स्त्रोत को समझ सकेंगे।
- इन्दिराजी की रचनाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- इन्दिराजी की वैचारिकता से अवगत हो जायेंगे।
- त्रिवेणी का जीवन-वृत्त समझ सकेंगे।
- उपन्यास लेखिका के रूप में त्रिवेणीजी का विवेचन कर सकेंगे।
- कहानी के क्षेत्र में त्रिवेणीजी का क्या स्थान है इस विषय से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- त्रिवेणी की लोकप्रियता पर प्रकाश डाल सकेंगे।

31.1 प्रस्तावना

कन्नड साहित्य को पुरुष लेखकों के साथ-साथ लेखिकाओं ने भी अपना योगदान दिया है। स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र की विशेष उपलब्दि यही है कि अबला मानीजानेवाली नारी अनायास ही वैचारिक धरातल पर सबला बनकर हर एक क्षेत्र में अपनी क्षमता का परिचय दे रही है। शिक्षित एवं आत्म निर्भर होकर उसने पुरुष के साथ अर्थ अर्जन करने के लिए कन्धे से कन्धा मिला दिया है। साहित्य के क्षेत्र में भी महिलाए पीछे नहीं रहीं। स्वतंत्रता के पश्चात् नारी भी शिक्षित होने लगी और लेखिकाओं ने यह महसूस किया कि नारी को अपनी संघर्षपूर्ण स्थितियों से उभरकर जीवन निर्वाह हेतु घर से बाहर आना है और समाज की परम्परागत गलत मान्यताओं, व पुराने संस्कारों को बदलने के लिए आवाज बुलंद करनी है। इस दौरान देश भर में नारी मुक्ति आन्दोलन भी शुरु हुआ। फलस्वरूप चार दीवारों में कैद नारी घर से बाहर आकर सुकून की साँस लेने लगी। नारी ने शिक्षा-साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, तकनिकी क्षेत्र में अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का प्रदर्शन करना शुरू किया।

अतः आधुनिक कन्नड-साहित्य की विविध-विधाओं एवं विभिन्न क्षेत्रों में नारी ने अपना योगदान देकर विशिष्ट स्थान बना लिया है।

31.2 कन्नड की लेखिकाओं का सर्वक्षण

कन्नड साहित्य में बारहवीं सदीं से ही साहित्य क्षेत्र में महिलाओं को देखा जाता है। उस समय बसवण्णा के आगमन से समाज के सभी वर्गों की महिलाओं को पुरुष के समान आदर और सुविधा मिली। फलस्वरूप कन्नड साहित्य क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश हो गया।

बारहवीं सदी की कवियित्रियों में अक्कमहादेवी का नाम सर्वप्रथम है। उन्होंने अपने साहित्य में नारी शोषण का विरोध और परम सत्ता का गुणगान किया है। लोकभाषा में उन्होंने पद्य शैली में जो कुछ कहा है वह सार्वकालिक सत्य के रूप में प्रचलित है। अक्कमहादेवी के साथ ही मोळिगे महादेवी, हडपद लिंगम्मा, उरिलिं कालम्मा, नीलांबिके, नागलांबिंके, गोग्गव्वे, किम्मव्वे, वीरम्मा, आय्दक्की लक्कम्मा रायम्मा, मुक्तायका, बोंतादेवी, लक्ष्मम्मा, कल्याणियम्मा, मसणम्मा, रेचम्मा, कायम्मा, गुड्डव्वे, गंगम्मा, रेम्मव्वा आदि ने अपने अनुभव के आधार पर जीवन तथ्य को पद्य के रूप में व्यक्त किया है।

इसके बाद कन्नड प्रदेश में मैसूर राजाओं तक कवयित्रियों का नाम सुनने नहीं आता है। विजयनगर राजाओं के प्रोत्साहन से सन १३६० में गंगादेवी ने वीर कपण्णरायचरित की रचना की थी। मैसूर महाराजा चिक्कदेवराज से प्रोत्साहित होन्नम्मा ने हदिबदेय धर्म, श्रृंगारम्मा ने पद्मिनी कल्याण, चेलुवांबे ने वरनंदी कल्याण और वेंकटाचल महात्मे लिखी हैं। अठारहवीं सदी में गलगली अव्वा ने श्रृंगार तारतम्य लिखा था। भागम्मा ने तृतीय स्कंध भागवत की रचना उद्धालिक के गीत, चंद्रहास चरित लिखे थे।

उन्नीसवीं सदीं में हरपनहल्ली भीमव्वा ने कृष्णध्यानामृत, नलचरित, शुक्रवार-शनिवार के गीत, सुधाम के गीत लिखे थे। चल्लम्मा ने रूक्मिणी परिणय लिखा था। सन्नबड़ति मणपक्का ने गोकर्ण महात्मे की रचना की है।

उन्नीसवीं सदी के अंत में राजनीतिक परिवर्तन के साथ स्त्रियों के स्थानमान में भी परिवर्तन हो गया। फलस्वरूप महिला साहित्य में नई रोशनी आयी। श्यामलादेवी बेलगाँवकर स्वतंत्रता पूर्व की लेखिकाओं में गिनी जाती हैं।

हूबिसिलु इनका कथा-संकलन है। जयलक्ष्मी श्रीनिवासन ने सरोजिनी नलिनी नामक जीवनचरित्र लिखा था। मोग्गु कथा संकलन और परिणय उपन्यास इनकी रचनायें हैं। सरस्वतीबाई राजवाडेजी ने कहानी, लेखन और उपन्यास लिखे हैं।

सन् १९४९ में शांतादेवी मालवाड का मोग्गय माले कथा संकलन के साथ साहित्य क्षेत्र में प्रवेश हुआ। इनकी कुंकुमबल, कन्नड तायी, केळदी चेन्नम्मा, अक्कनागलांबिके, स्वाभिमानी बेलवडी नारी आदि बाईस से अधिक रचनाएँ हैं। इन्होंने रसपाक, सोबगिन मने, महिला अलंकार आदि महिलाओं के लिए उपयुक्त पुस्तकें भी लिखी हैं। साहित्य क्षेत्र में वाणी ने उपन्यासकार के रूप में अपना परिचय दिया है। इनका बिहुगडे, चिन्नद पंजर, मनेमगळु, अवळ भाग्य, अंजली, कावेरिय मडिलल्ली, बालेय नेरलु आदि उपन्यास प्रमुख हैं। एरडु कनसु, शुभमंगल, होस बेलकु चलनचित्र के रूप में लोकप्रिय हैं।

स्वतंत्र्योत्तर कालीन लेखिकाओं में त्रिवेणी अत्यंत प्रमुख हैं। उन्होंने हूहण्णु, शरपंजर, बेक्किन कण्णु, दूरद बेट्ट, अपस्वर, सोतु गेद्दबलु, अपजय, कीलु गोंबे, हण्णेले चिगुरिदाग, वसंतगान, कंकणमुक्ति, तावरेकोल, अवळ मगळु, आदि उपन्यास लिखे हैं। हेंडतिय हेसरु,समस्येय मगु आदि कथासंकलन भी प्रमुख हैं। सन् १९५४ में डॉ अनुपमा निरंजन ने उपन्यास लेखिका के रूप में साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया। संकोलेयोळगिंद, नूलुनेयगे, चित्र, हिमद-हू, आकाशगंगे, सस्यश्यामला, कोळचे कोंपेय दिनगलु आदि उपन्यास लिखे हैं। इन्होंने इसके साथ ही कथा संकलन और अनेक वैद्यकीय ग्रन्थ भी लिखे हैं।

नारी समस्या पर प्रकाश डालना उनका प्रमुख लक्ष्य है। स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं में गीता कुलकर्णी प्रमुख हैं। उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, शिशुसाहित्य आदि साहित्य के विविध क्षेत्रों में अपना योगदान दिया है। सन् १९६१ में आर्यांबा पट्टाभी ने उपन्यास के माध्याम से अपना परिचय दिया। होंगनसु, प्रियसंगप, एरडु मुख, सवति नेरलु आदि उपन्यासों के साथ कई कहानियाँ भी लिखी हैं। श्रीमती शांतादेवी कणवी को कहानीलेखिका के रूप में पहचाना जाता है। सन् १९६८ में संजे मल्लिगे कथा संकलन के बाद अनेक कथा-संकलन प्रकाश में आये हैं। श्रीमती वीणा शांतेश्वर ने भी सन् १९६९ में नव्य लेखिका के रूप में प्रवेश किया।

उन्होंने अनेक कथा संकलन, लघु उपन्यास आदि लिखे हैं। एच एस पार्वती ने भी अनेक उपन्यास, कहानियाँ लिखी हैं। वे हास्य-लेखिका के रूप में भी पहचानी जाती हैं। टी सुनंदम्मा भी हास्य लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हैं। जंबद चील, पेप्परमिंटु, बण्णद चिट्टे, तेनाली रामकृष्ण रचनाओं के साथ हास्य लेख, व्यक्ति चित्र रेडियो-रूपक भी लिखे हैं। एच वी सावित्रम्मा ने नारी शोषण के विविध रूपों को चित्रित करके कुछ हद तक पुरुषद्वेषी के रूप में साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया था। वे प्रचार-प्रसाद से दूर रहकर ही लिखती थीं। बण्डाय या विद्रोही साहित्य की प्रमुख लेखिका बी टी ललितानायक इस दौर की उल्लेखनीय लेखिका है। उन्होंने अपनी कहानियों में लमाणी समाज की अनेक समस्याओं का यर्थार्थ चित्रण किया है। उनकी कहानियाँ अपनी निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हैं। उनकी कहानियों में **कोले** नामक कहानी अत्यंत प्रभावशाली एवं लोकप्रिय है। अनुपमा निरंजन, ए पंकजा, पुष्पा एन राव, नीलादेवी, ईचनूर जयलक्ष्मी, ईचनूर शांता, अनुसूया रामरेड्डी, मंगला सत्यन्, प्रेमा भट्ट, रेखा काखंडकी, गिरिजा, गीता नागभूषण, बाई के संध्या शर्मा, अश्विनी, साईसुते, के सरोजा राव, सी एन जयलक्ष्मीदेवी, डॉ नलिनी मूर्ति, जयंतीबाई, बी। कामाक्षम्मा, डॉ कमला हंपना, डॉ एम आर उमादेवी, डॉ एच एस सुजाता, विजयलक्ष्मी, डॉ सरोजीनी महिषी, डॉ हेमा पट्टणशेट्टी, भुवनेश्वरी हेगडे आदि कन्नड साहित्य की प्रमुख लेखिकाएँ हैं। स्वातंत्र्योत्तर कन्नड लेखिकाओं की संख्या ज्यादा होती जा रही है। सुधा, प्रजावाणी, तरंग, तुषार, वनिता, गृहशोभा जैसी पत्रिकाओं में कहानी, उपन्यासों का प्रवाह ही बह रहा है।

31.3 एम के इन्दिरा

एम के इंदिरा का जन्म ५-१-१९१७ में मलेनाड के सुंदर प्रदेश तीर्थहल्ली में बनशंकरम्मा और सूर्यनारायणजी की पुत्री के रूप में हुआ। त्रयोदशी रोहिणी नक्षत्र और शुक्रवार गोधूलि के समय जन्म लेने से इनका नाम इंदिरा रखा गया था तीर्थहल्ली उनका मायका था। जिस प्रकार उत्तर के पहाड़ी प्रदेश की अपनी विशेषता होती है, उसी प्रकार मलेनाड भी कर्नाटक के दक्षिण का पहाड़ी प्रदेश

मुग्ध सरल सुंदर युवती के समान लज्जावान लगता है। उसी प्रकृति की गोद में जन्म लेने के कारण उनमें भी वहीमुग्धता थी।

एम के इंदिराजी ने ओपचारिक शिक्षा अधिक प्राप्त न करने पर भी प्रकृति से बहुत कुछ सीखा था। माध्यमिक स्कूल की दूसरी कक्षा आज की छठी कक्षा में ही उनकी औपचारिक शिक्षा अधूरी रहा गई। अध्ययन का भाग्य न मिलने का दुःख उनको अंत तक था। आरंभ मं उन्होंने अपने नाना लक्ष्मणरावजी से मुरली वादन सीखा था। इंदिरा ने अपनी नानी से गाना आदि भी सीखा था।

१६२६ में बारह साल की उम्र में ही इंदिराजी का विवाह मंडगद्दे कृष्णराव के साथ संपन्न हुआ। इस प्रकार वे स्वयं बाल्य विवाह का शिकार बन गई थी। स्कूल में पढ़ने की उम्र में पति के संप्रदायशील घर में उस बच्ची पर गृहिणी का पद संभालने की ज़िम्मेदारी आई थी। दुर्भाग्य के कारण इन के पति कृष्णराव अस्थमा रोग से पीडित हो गये और १-११-१६६६ में इनका देहान्त हो गया। पति की इच्छा के अनुसार साहित्य सृजन का कार्य इंदिराजी ने जारी रखा।

31.3.1 विभिन्न प्रभाव

घर के संस्कार, साहित्यिक वातावरण और मलेनाड के प्रकृति सौंदर्य से प्रभावित होकर एम के इंदिरा ने साहित्य सृजन कला को सहज रूप से अपनाया था। वे स्वयं समाज की कुप्रथा - बालविवाह का शिकार हो चुकी थी। इस कुप्रथा को समाज से दूर करने की इच्छा उनमें प्रखर थी। एम के इंदिराजी ने बचपन से रामायण-भारत पंचतंत्र आदि पढ़कर अपना ज्ञान बढ़ा लिया था। प्रेमांकुर उपन्यास से एम के इंदिरा प्रभावित हुई थीं। पत्र पत्रिकाएँ पुस्तकें पढ़ने में उनकी विशेष रुचि थी। साथ ही बचपन से नाटक सिनेमा आदि भी देखती थीं। इससे सुरुचि संपन्न साहित्य रचना करने की उनकी रुचि प्रबल होती गयी। कन्नड़ के श्रेष्ठ उपन्यासकारों के उपन्यासों से भी एम के इंदिरा प्रभावित हुई थीं। १६४६-४७ तक एम के इंदिराजी मंड्या में रहती थी। उसी समय में वे हिन्दी सीखने लगी। कन्नड की ख्यात लेखिका त्रिवेणीजी भी उसी कक्षा में शामील हो चुकी थीं। वे दोनों स्नेह-सूत्र में बाँध चुकी थीं। त्रिवेणी नाम भी इंदिराजी ने ही प्यार से रखा

था। त्रिवेणीजी का पहला नाम अनुसूया था। त्रिवेणीजी ने एम के इंदिराजी को साहित्य सृजन के लिए अधिक प्रोत्साहित किया।

नारी अपने शोषण के प्रतिकार रूप में ही समाज में प्रकट होती है। इस बात को एम के इंदिराजी भी मानती हैं। एम के इंदिराजी के समय नारी समस्याओं में फ़ँस चुकी थी। तब नारी शोषण का अंत ही नहीं था। बाल विवाह से उस मुग्धा पर अत्याचार किया जाता था। उसी बालिका को दुर्भाग्य से यदि वैधव्य प्राप्त हो गया तो पुरुष उसे अपनी वासना का शिकार बनाता, और वही पुरुष उसी नारी को समाज से बहिष्कृत करने का प्रयत्न करता था। यदि नारी इस अन्याय के प्रति आवाज़ उठाने का प्रयत्न करेगी तो धर्म की आड़ में मठधिपतियों का सहारा लेकर उस अबला की आवाज़ बंद की जाती थी। वे जानते थे कि चरित्रवान मठधिपति बहुत कम थे। यदि नारी विकलांगा हो, तब पूछना ही क्या, उसे समाज में सभी लोग अनादर से देखते थे। ऐसी विषम परिस्थिति में एम के इंदिराजी ने कलम चलाना शुरू किया। वे भी उसी समाज की एक नारी थीं। उन पर भी कुछ बंधन था। फिर भी उन्होंने नारी शोषण के विरोध में आवाज़ उठायी थी। उन्होंने अपने संपूर्ण साहित्य द्वारा इस समस्या की गंभीरता को लोगों तक पहुंचाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने कहीं पुरुष पर व्यंग्य किया तो कहीं नारी को चेतावनी भी दी थी।

सामान्यतः साहित्यकार कोई भी अचानक प्रेरणा ग्रहण नहीं कर सकता। लेकिन समाज या संस्कृति की प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रेरणा साहित्यकार में सुप्त प्रतिभा के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। एम के इंदिराजी अपनी छियालीस साल की उम्र के बाद यकायक साहित्य सृजन में लगीं तो किसी न किसी प्रेरणा से ही लगी थीं। लेकिन मंलेनाड ने प्रकृति माता की गोद में बिठाकर इंदिराजी को सहज ही सृजनशील बना दिया था। नगर के यांत्रिक जीवन और सामाजिक ज़िम्मेदारियों को स्वयं अनुभव करके उनमें पक्वता आई थी। ठीक उसी समय अपने परिवार का ही एक चित्र तुंगभद्रा उपन्यास के रूप में हमारे सामने रखा दिया। इस उपन्यास की शैली, कथावस्तु का संगठन और संस्कृति के चित्रण से उनको अत्यधिक प्रशंसा और प्रोत्साहन मिला। तब से वे निरंतर लिखती रहीं। एम के इंदिरा को उनके पति

कृष्णराव हमेशा प्रोत्साहन देते थे। वे साहित्य क्षेत्र से दूर रहने पर भी पत्नी को अपने व्यवसाय क्षेत्र के अनुभव बताकर लिखने की प्रेरणा देते थे। एम के इंदिरा की सहेली कन्नड साहित्य की श्रेष्ठ उपन्यास लेखिका त्रिवेणीजी ने भी इंदिराजी को साहित्य सृजन के लिए प्रोत्साहित किया था। कुवेंपु, कारंत आदि कन्नड के श्रेष्ठ साहित्यकारों का भी इंदिराजी पर प्रभाव पड़ा था।

31.3.2 साहित्य सृजन की प्रेरणा

कन्नड प्रदेश के जनसमुदाय का गौरव, पत्रकारों और प्रकाशकों का सहयोग तथा श्रेष्ठ साहित्यकारों का आशीर्वाद ही मेरी उन्नति के लिए कारंत बने - इस प्रकार एम के इंदिराजी ने एक समाचार पत्र में लिखा था।

इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी लिखा हैं - समाज में देखी सुनी बातों को ही लिखती हूँ। जो देखा है, सुना है या तो मेरा अनुभव ही होता है। बिना नींव के घर बनाना मैं नहीं जानती। कल्पना की आवश्यकता होती है, लेकिन वास्तविक घटनाओं का चित्रण प्रभावपूर्ण बनाने के लिए ही उसका स्थान रहना चाहिए। उनका अधिकांश साहित्य इसी वास्तविकता पर ही रचित है। घर की संस्कृति, मलेनाड की प्रकृति के बीच उनकी साहित्य- सृजन कला का विकास हुआ।

व्यकक्ति के व्यक्तित्व की पहचान उसके साहित्य द्वारा होती है। एम के इंदिराजी स्वभाव से स्नेही और शांत होने पर भी समाज में स्थित दुष्टताओं को दूर करने के लिए उन्होंने कटुता और व्यंग्य को अपनाया। उन्होंने नारी को शोषण का विरोध करनेवाली के रूप में चित्रण किया हैं। एम के इंदिराजी की अधिक रचनाओं में मलेनाडु के जन जीवन, वहाँ के रीति-रिवाज आदि अधिक उल्लेख हैं। उन्होंने नगर और ग्रामीण जीवन की तुलना भी की है। वे ग्रामीण जीवन को ही सुखी एवं निरातंक मानती हैं।

उन्होंने साठ से अधिक उपन्यास कथाएँ लिखी हैं, अनुभव को ही उन्होंने रचना की आधारभूमि माना था। असाधारण स्मरणशक्ति और अत्यंत मोहक शैली से वर्णन करने की क्षमता उनमें थी। उन्होंने मानवीय मूल्य को अपनी रचनाओं में

व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। नारी उत्थान के साथ समाज का पुनरुत्थान भी उनका लक्ष्य रहा। ग्रामीण संस्कृति को नागरिक भाषा में व्यक्त करने की उनकी अपनी विशेषता थी। इसी कारण से वे अत्यंत लोकप्रिय बन सकीं।

31.3.3 रचना संसार

१९६३ के समय कन्नड साहित्य में नव्य साहित्य का ही अधिक प्रचलन था। उसका प्रभाव एम के इंदिराजी के साहित्य पर भी पड़ा। सामाजिक समस्याओं पर, विशेषकर नारी समस्या के प्रति उनकी सहानुभूति थी। उनमें प्रतिभा थी। इसी कारण उन्होंने सामाजिक, पारिवारिक समस्याओं को लेकर मलेनाड के जन-जीवन को जन भाषा में कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। एम के इंदिराजी को लिखना आर्थिक दृष्टि से भी जरूरी था। इसी कारण से उनके कई उपन्यास श्रेष्ठ हुए तो कुछ उतने प्रभावपूर्ण नहीं हुए। सदानंद, गेज्जेपूजे, नागवीणा, फणियम्मा, गिरिबाले जैसे अनेक श्रेष्ठ उपन्यासों के साथ उनकी साठ से अधिक रचनाओं का उल्लेख कर सकते हैं।

१ तुगभद्रा १९६३ - यह उनका प्रथम उपन्यसा है। इससे पहले उन्होंने १९६०-६१ में पश्चिम करावली नाम की एक कहानी मात्र लिखी थी। इस उपन्यास में तुंगा और भद्रा अंधी लड़कियों के सहज जीवन वृत्तांत के साथ मलेनाड के ब्राह्मण समाज की पारिवारिक जीवन गाथा भी है। कृष्णवेणी, मुद्दराम, और मथुरा, राघु के आदर्श प्रेम के साथ ही प्रकृति विकोप का भी चित्रण हुआ है। पारिवारिक घटनाओं को ही गूँथकर उपन्यास की रचना की है, लेकिन उपन्यास के तत्व के अनुसार यह एक श्रेष्ठ उपन्यास है।

२ सदानंद १९६५ - एम के इंदिरा के मामा के घर में एक बाल विधवा थी। उसीको कमला के रूप में देखते हुए उपन्यास लिखा है। वे कहती हैं - सदानंद एक आदर्श पात्र है, उसकी विचार धाराएँ मेरी अपनी विचार धाराएँ हैं। इस उपन्यास का उद्देश्य ही बालविधवा का पुनर्विवाह रहा है। बालविधवाओं की समस्याओं को समाज से दूर करने में जो कुछ बाधाएँ आती हैं, उनके सहज चित्रण के साथ ग्रामीण समाज में उसके प्रभाव को भी दर्शाया है।

३ गेज्जेपूजे (घुँघरू पूजा) १९६६ - यह उपन्यास कथा मैसूर में देखी हुई एक घटना पर आधारित है। वहाँ ब्राह्मण लड़का किसी वेश्या पर अनुरक्त था, पर सामाजिक बंधन के कारण दोनों मिल न सके। अंत में दोनों ने आत्महत्या कर ली थी। लेकिन इंदिराजी ने उपन्यास में परिवर्तन कर दिया है - चन्द्रा ही आत्महत्या करलेती है। प्रेमी सोमु और पिता चन्द्रशेखर के लिए चन्द्र का पात्र बलिदान के रूप में चित्रित हुआ है। यहाँ गेज्जेपूजे जैसी कुप्रथा पर भी व्यंग्य किया गया है।

४ मन तुंबिद मडदि (मन भायी पत्नी) - यह एक भावना प्रधान सामाजिक उपन्यास है। इसमें दहेज प्रथ का विरोध किया गया है। उपन्यास में नारी का स्वभाव और गृह जीवन का चित्रण है। प्रेमा और सुंदर का जीवन चित्रण ही उपन्यास में प्रमुख हो जाता है।

५ ब्रह्मचारी १९६७ - इस उपन्यास में कुलीन घराने की बहू तंगम्मा किसी बाबा के साथ भाग जाती है। इसका प्रभाव घर के सभी लोगों पर पड़ता है पति और सास तो दुख से मन जाते हैं। उसी घर का शिवा भाभी के दुराचरण से दुखी होकर ब्रह्मचारी बनता है। गिरिजा शिवा को ही अपना पति मान बैठती है। अंत में उसे भी ब्रह्मचारिणी ही रहना पड़ा।

६ हेण्णिन आकांक्षे (नारी की आकांक्षा) १९६८ - इस उपन्यास में एक नारी (लोला) की भावनाएँ और अमीर ग्रामीण परिवार की कथा है। लोला अपनी इच्छा से मुरली के साथ विवाह कर लेती है। घर की अनेक दुर्घटनाओं से दुखित अनंतय्या अंत में इस विवाह से खुश हो जाते है।

७ तापदिंद तंपिगे (धूप से छाया तक) १९६८ - इस उपन्यास में ग्रामीण युवक किसी भ्रामक नारी के प्रेम चक्र में फँसकर धोखा खाता है। दुखी होकर वह मलेनाड के अपने घर लौटता है। वहाँ गंगा के साथ उसका विवाह हो जाता है।

८ टु-लेट १९६८ - इस उपन्यास में किराए के मकान में रहने वालों की समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

९ तपोवनदल्ली (तपोवन में) १९६८ - इस उपन्यास में ढोंगी बाबा के ढोंग पर व्यंग्य किया गया है। ऐसे बाबओं के आश्रम में घटनेवाले अन्याय पापकर्म और उनके दुष्प्रभाव पर इस उपन्यास में प्रकाश डाला गया है।

१० गिरिबाले (पहाडी कन्या) १९६९ - यहाँ एक नारी शंकरी का त्याग, सहिष्णुता और मुग्धता को चित्रित किया गया है।

११ डॉक्टर १९६९ - इसमें पारिवारिक जीवन का ही चित्रण हुआ है। इंदिराजी ने यहाँ मलेनाड के ग्रामवासियों की मुग्धता का चित्रण दिया है।

१२ कलादर्शी १९६९ - इस उपन्यास में के कलाकार का जीवन कथा की चित्रण है। वह सौंदर्य में कला को ढूँढता हुआ मलेनाड पहुँचता है। वहाँ चिन्ना नाम की अपूर्व सुंदरी को देखकर उसीको अपनी कलादर्शिनी मानता है।

१३ नागवीणा १९६९ - इस उपन्यास में विलासिनी नारी के कारण होनेवाले बेटी के दुखान्त जीवन का चित्रण हुआ है। यहाँ जगदीश्वरी की भोग-लालसा के कारण भुवना दुखी हो जाती है। नारी के पवित्र प्रेम का भुवना में इंदिरा ने चित्रण किया है।

१४ बिदिगे चन्द्रम डोंकु (दूजा चाँद टेढा है)१९६९ - प्रस्तुत उपन्यास में वसंत का पाँव दुर्घटना के कारण नष्ट हो जाता है। यह जानकार भी विवशता से बृन्दा उसके साथ विवाह कर लेती है। बाद में पति के आदर्श गुण को देखकर कहती है - दूजा चाँद टेढ़ा होने पर चाँदनी में क्या फ़र्क़ पड़ता है

१५ मुसुकु (घूँघट)१९७० - इस उपन्यास में अनैतिक आचरण से उत्पन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इस समस्या के कारण भाई - बहन में प्रेम हो जाने के यथार्थ सत्य का यहाँ चित्रण हुआ है।

१६ आत्मसखी १९७१ - इसमें एम के इंदिराजी के नाना अरगद अनंत शर्माजी की जीवनकथा है। वे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शिष्य थे। उनके आदर्श, ज्ञान और सहिष्णुता का यहाँ चित्रण हुआ है।

१७ चिद्विलास १९७१ - इस उपन्यास में कॉलेज जीवन के छात्र - छात्राओं के स्वप्न और उनके भविष्य जीवन की कथा चित्रित है।

१८ यारु हितवरु (कौन हितू है)१९७२ - इसमें एक आदर्श युवक का चित्रण हुआ है। उससे रेणुका और शर्वाणी प्यार करती हैं। उनमें किसके साथ विवाह करना है, इसी विचार की चर्चा में ही उपन्यास कथा का विकास हुआ है।

१९ सुखांत १९७३ - इस उपन्यास में गृहकलह के कारण प्रेमियों में विरह हो जाता है। अंत में दोनों के एक साथ अपने जीवन का अंत करने के साथ उपन्यास का अंत होता है। राम और कमली के आदर्श प्रेम और विश्वास का यहाँ चित्रण हुआ है।

२० जातिकेट्टवळु (जातिभ्रष्ट) १९७३ - इस उपन्यास में जातिप्रथा पर व्यंग्य किया गया है। जाति के नाम पर होनेवाले सामाजिक शोषण पर यहाँ व्यंग्य है।

२१ शांतिधाम १९७३ - प्रशांत घर बच्चों के कुटिल स्वभाव के कारण किस प्रकार अशांत हो जाता है, इसका सहज चित्रण इस उपन्यास में देखा जाता है।

२२ कतेगार (कथाकर)१९७४ - इस उपन्यास में मूर्ति अपने मित्र मधुरनाथ पर कहानी लिखने की इच्छा रखता है। मधुरनाथ और नेत्रावती की कहानी लिखने में मूर्ति ही नेत्रावती से आकर्षिता होने लगता है। यहाँ मधुरनाथ से दूर रहकर दुख का अनुभव करने वाली नेत्रावती का ही पात्र चित्रण महत्वपूर्ण है।

२३ कूचुभट्ट (मूर्ख भट्ट) १९७५ - इस उपन्यास में विवेकहीन व्यक्ति काव्य में वर्णित सौंदर्य को ढूँढ़ते हुए समाज में अपहास्य का शिकार बनता है। अंत में उसका भ्रम दूर हो जाने का चित्रण हुआ है।

२४ वर्णलीले (वर्णलील) १९७५ - इस उपन्यास में कीर्तिनाथ और रसवंती के प्रेम भग्न हो जाने का और कीर्तिनाथ का विवाह निर्मला के साथ होने का विकास होता है।

२५ हसिउ (भूख) १९७५ - इस उपन्यास की कथा में घर से उपेक्षित एक नारी अंधे युवक के साथ विवाह कर लेती है। उपेक्षित व्यक्तियों की समस्याओं का चित्रण हुआ है।

२६ मधुवन १९७६ - इसे सदानंद उपन्यास का ही उत्तरार्ध कहा सकते हैं। यहाँ सदानंद गुण का चित्रण किया गया है।

२७ जाल १९७६ - इस उपन्यास में एक वासनाग्रस्त नारी के पापकर्म और अंत में व्यक्त उसकी ग्लानि का चित्रण है।

२८ फणियम्मा १९७६ - नाना की बहन की ही कथा को उपन्यास के रूप में लिखा है। वे नौ साल की उम्र में ही विधवा बनीं और बारह साल पर ही उनका केश मुंडन किया गया था। अपने सुदीर्घ जीवनकाल में उन्होंने इतनी लोकसेवा की थी कि, अपने बारे में सोचने को उन्हे समय ही नहीं था। वे १०२ साल तक जीवित थी। यह उपन्यास राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार से भी सम्मानित है। इसमें फणियम्मा के बचपन से अंत तक के जीवन वृत्तांत का चित्रण हुआ है।

२९ गुंड १९७७ - इस उपन्यास में गुंड नाम से प्रचलित मलेनाड के एक युवक की जीवनगाथा का चित्रण मिलता है।

३० मने कोट्टु नोडी (घर देकर देखो) १९७८ - अपने घर दूसरों के किराए पर देने से जो समस्याएँ आती हैं उनका हास्यपूर्ण शैली से चित्रण किया है।

३१ हू-बाण (पुष्प बाण) १९७८ - इस उपन्यास में माँ-बाप के प्रेम से वंचित नारी और पूरुष की प्रेम कथा का चित्रण हुआ है।

३२ ओन्दे निमिष (एक ही निमिष) १९७८ - मनुष्य के जीवन में अचानक धटित घटनाओं के परिणाम को इस उपन्यास में चित्रण किया गया है।

३३ आभरण (आभूषण) १९७९ - इस उपन्यास में एक बाल विधवा की करुणा कथा है।

३४ नूरोन्दु बागिलु (एक सौ एक दरवाज़े) १९८० - इस उपन्यास में अमरावती नाम की एक अमीर नारी की जीवन कथा चित्रित है। मलेनाड के लोगों का सरल शांत, मुग्ध, स्वभाव भी इस उपन्यास के रूप में चित्रित है।

३५ रसवाहिनी १९८० - इंदुमती और वेणु नाम के स्त्री पुरुष के मधुर दांपत्य जीवन का चित्रण ही उपन्यास के रूप में चित्रण है।

३६ पूर्वापर १९८१ - इस उपन्यास में पाश्चात्य और पूर्वात्य संस्कृति की तुलना में भारतीय संस्कृति की महत्ता को श्रेष्ठ कहने का विचार ही उपन्यास के रूप में चित्रित है।

३७ ताळिदवरु (सहनेवाले) १९८२ - इस उपन्यास में एक विधवा के सहिष्णु स्वभाव का चित्रण हुआ है।

३८ तग्गिनमने सीते १९८३ - इस उपन्यास में अज्ञान अंधश्रद्धा से भरे पुरुष शासित समाज में आनेवाली एक गंभीर, विवेकपूर्ण नारी का चित्रण हुआ है।

४० मनोमंदिर १९८३ - एक नारी की भग्न प्रेम-कथा और एक बाल विधवा के शोषण का मर्मस्पर्शी चित्रण इस उपन्यास में चित्रित है।

४१ सूत्रधारी १९८४ - इस उपन्यास में एक कलाकार की जीवन कथा का चित्रण हुआ है।

इसके अलावा उन्होंने नगबेकु नाम का हास्य लेख-संग्रह भी प्रकाशित किया है भारत के प्रवास कथन के अनुभव कुंज नाम की किताब में लिखा है १९८७। चलन चित्र जगत के अनुभव के आधार पर चित्र भारत नाम का सिनेमा लेख लिखा था। चित्रशिल्पी पुट्टण्ण कणगाल कन्नड भाषा के ख्यात सिनेमा निर्देशक का जीवन चरित्र भी उन्होंने लिखा है। हंसगान नाम का लघु निबंध संग्रह इन्होंने लिखा है।

उनका फणियम्मा उपन्यास एक दुखी नारी की जीवन-गाथा है। उसमें नारी की सभी समस्याओं पर प्रकाश डाल गया है। फणियम्मा का विवाह बचपन में ही होता है। अंधश्रद्धा और अज्ञान के कारण वह पति को देखने से पहले ही विधवा

बनती है। एक बालविधवा समाज में किस प्रकार अन्याय का शिकार हो जाती है, इसका स्पष्ट चित्रण दिया है। अंत में फणियम्मा में वैराग्य भाव दर्शाकर समाज पर कठोर व्यंग्य किया है। संप्रदाय की आड़ में दाक्षायणी नाम की एक बालविवाह का केशमुंडन करने के विचार में फणियम्मा ही विरोध करती है।

पुरुष अपने पाप को नारी पर आरोपित करके मूँछों पर ताव देते हुए नारी को विवशता में फँसा देता है। ऐसे अत्याचारियों पर एम के इंदिराजी ने व्यंग्य किया है। बालविधवा दाक्षायणी अपने देवर के कारण ही गर्भवती बनती है। उस शोषिता नारी को इसी बहाने घर से बाहर भेजने की तैयारी चलती है। तब वह शोषण को चुपचाप सहन करने के बदले में देवर का ही भंडा फोड़ती है। देवर से ही पुनः विवाह कराने का आग्रह भी करती है। यहाँ एम के इन्दिराजी ने नारी में धैर्य की आवश्यकता और शोषण का विरोध कनने की प्रवृत्ति को अपनाने की सलाह दी है। उन्होंने विकलांगता को शाप न समझाकर उसके प्रति मानवीय अनुकंपा रखने को कहा है। उनके मधुवन उपन्यास में अंबक्का विकलांग होने पर भी सद्गृहिणी के रूप में चित्रित है। सदानंद उपन्यास में बालविधवा कमली का पुनर्विवाह सामाजिक परिवर्तन का संकेत है। गेज्जेपूजे में उन्होंने वेश्या पर अपनी अनुकंपा व्यक्त की है। एम के इन्दिराजी के समय में समाज अज्ञान और अंधश्रद्धा से भरा था। इस अज्ञान के बीच नारी-शोषण व्यवस्थित रूप से चलता था। कहीं बालविधवा गर्भवती हो जाती तो उसके कारण कर्ता ही शृंगेरी मठ जाकर, उस विधवा को जाति से भ्रष्ट करते थे और समाज में उस अबला को सब की गुलामी करने की विवशता में फँसा दिया जाता था। मठ में धर्म रक्षक भी न्याय - अन्याय पर सोचने को समय व्यय नहीं करते थे। वे भी नारी शोषण को प्रोत्साहन देते थे। यहाँ एम के इंदिरा ने इस विचार पर ध्यानाकर्षित कर कहा है कि धर्मरक्षक स्वयं पुरुष थे किंतु उनके आचरण में पवित्रता नहीं थी। एम के इंदिरा के समाज में नारी गर्भवती हो या रोगी, उसके लिए हमेशा भरपूर काम रहता था। सुबह से रात तक वह काम करती ही रहती थी।

31.3.4 वैचारिकता

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्यकार उस दर्पण को सदा शुभ्र रखने का प्रयत्न करता है। इसलिए वह अपने विचारों को साहित्य के द्वारा व्यक्त करता है। एम के इंदिराजी को भी अपने समाज में परिवर्तन की इच्छी थी। इससे वे समाज को बदलने की आशा रखती थी। उन्होंने समाज में फैली हुई जातीय संकीर्णता को दूर करने की इच्छा व्यक्त की थी। वे मानव मात्र के प्रेम में विश्वास रखती थीं। फणियम्मा ब्राह्मण वर्ग की होने पर भी निम्न वर्ग की दलित नारी को बचाने के लिए मुसल्मान स्त्री के साथ दलित नारी के घर जाती है। उनका विचार है कि अज्ञान और अंधश्रद्धा से भरा यह समाज जातिधर्म के दंभी आचरणों को त्यागने पर अधिक विश्वास न करके वास्तविकता को समझाने को कहा है। बालविधवा फणियम्मा से लेखिका कहलवाती है - मेरा विवाह तो जन्मकुंडली की गणना के आधार पर ही हुआ था। उसमें मेरा सौभाग्यवती रहने का विचार कहाँ तक सत्य निकला।

एम के इंदिराजी के समय वहाँ का समाज अज्ञान से भरा था। समाज के लोगों में दो वर्ग अवश्य थे - एक शोषक और दूसरा शोषित। दूसरे वर्ग में सामान्यतः निम्न वर्ग कहलाने वाले शूद्र और नारी रहती थी। मठ और मठाधीशों की सहायता से धर्म की आड़ में भी इनका शोषण हो जाता था। अबला को विवशता में फँसाकर पुरुष उस पर अत्याचार करता था। वही पुरुष उस नारी को भ्रष्ट कहकर समाज से बाहर रखने को लालायित होता था। धर्माधीश उक्तोच लेकर पुरुष की इच्छा के अनुसार अबला नारी को ही धर्म भृष्ट कह देते थे। नारी की भ्रष्टता के लिए जो पुरुष प्रमुख था, उसे समाज में सभ्य समझा जाता था। ऐसे अमानवीय शोषण का एम के इंदिराजी ने प्रबल विरोध किया है। समाज में प्रचलित बालविवाह का उन्होंने विरोध किया। वे मानती हैं कि इस कुप्रथा से ही नारी शोषण का प्रारंभ होता है और यदि वह दुर्भाग्य से बाल विधवा हो जाती तो समाज उसे वेश्या बना देता है। उसकी संतान को अवैध कहकर उसपर भी अमानवीय शोषण शुरू हो जाता है।

अंतर्जातीय विवाह से सामाजिक संबंधों का विकास होने में एम के इंदिराजी का विश्वास था। वे वेश्याओं को समाज में उचित स्थान - मान देने के पक्ष में थीं। पुरुष अपनी वासना-पूर्ति के लिए नारी को वेश्या बनाता है। वही पुरुष वेश्या को समाज से दूर रखने की इच्छा रखता है। वेश्या भी मानवी है, उसकी भी इच्छा-अनिच्छा होती है। इसलिए मानवीय दृष्टिकोण से वेश्याओं को देखने का संदेश दिया है।

समाज में कपट सन्यासियों की संख्या अधिक हो रही है। धूर्त लोग इस रूप में अपनी धूर्तता को छिपाने का प्रयत्न करते हैं और समाज में सम्मानित होते हैं। इस समस्या को उन्होंने अपने तपोवनदल्ली उपन्यास में स्पष्ट किया है। ऐसे धूर्त बाबाओं से जागृत रहने की सलाह भी दी है।

विधवा के पुनर्विवाह को वे प्रात्साहन देती हैं। जिस प्रकार पत्नी की मृत्यु के तुरंत बाद पुरुष दूसरा विवाह कर लेता है। उसी प्रकार नारी के भी पुनर्विवाह की प्रथा समाज में लाने की इच्छा रखती हैं। इस विचार की पुष्टि में मधुवन उपन्यास में कमला नाम की बालविधवा का विवाह सदानंद के साथ हो जाता है।

एम के इंदिरा ने कभी भी पुरस्कार या सम्मान की कामना से साहित्य की सृजन नहीं किया था। फिर भी उनके साहित्य की मौलिकता को पहचानकर अनेक पुरस्कार एवं सम्मान उनको ही ढूँढ़ते हुए आ पहुँचे। १९६४ में उनको त्रिवेणी कथा स्पर्धा में विशेष पुरस्कार मिला। उनको १९७१ और १९६४ में क्रमशः शिवमोग्गा और चिकमगलोर जिला साहित्य सम्मेलन में सम्मानित किया गया था। उनको सन १९७६ में कर्नाटक राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९८० से १९८४ तक अखिल कर्नाटक लेखिकाओं के सम्मेलन में इनको सम्मानित किया गया था। सन १९८० से एम के इंदिराजी कर्नाटक सरकार द्वारा रु ५०० मासिक मान पुरस्कार के रूप में पाती रही थीं।

31.4 त्रिवेणी

त्रिवेणी आधुनिक कन्नड-साहित्य की युग-प्रवर्तक लेखिका है। उनका जन्म सन् १-६-१६२८ में मैसूर में हुआ। त्रिवेणी का सुसंस्कृत परिवार था। आधुनिक कन्नड साहित्य के पितामह और कण्व नाम से विख्यात बी एम श्री जी त्रिवेणी के पिता कृष्णरायजी के बडे भाई थे। कन्नड अंग्रेजी और संस्कृत भाषा के धनी श्री बी एम श्री जी ने आलोचना, शोध आदि के क्षेत्र में विस्मरणीय योगगान दिया है। उन्हीं के छोटे भाई कृष्णाराय और उनकी पत्नी तुंगम्मा त्रिवेणी के माता-पिता थे। उनकी माता तुंगम्माजी भी सुसंस्कृत परिवार की थी। कृष्णरायजी की बहन सुब्बम्मा वाणी भी कन्नड की प्रसिद्ध लेखिका थी।

त्रिवेणीजी का बचपन साहित्यिक माहौल में बीता। बी एम श्री जी का सीधा प्रभाव इन पर हुआ। त्रिवेणी के बचपन का नाम भगीरथी था, जब वे स्कूल जाने लगी तब उनका नाम अनुसूया करदिया गया और जब साहित्य सृजन करने लगी तब उनका नाम त्रिवेणी होगया। यह त्रिवेणी नाम कन्नड की ख्यात लेखिका एम के इंदिरा ने दिया था। आगे कन्नड साहित्यिक जगत में इसी नग्म से त्रिवेणीजी विख्यात होगयीं।

त्रिवेणीजी को पढने लिखने का शौक छात्र-जीवन से ही था। उन्होंने अपने निजी अनुभवों को साहित्य के ढाँचे में ढालकर कन्नड साहित्य के जगत में एक नया अध्याय शुरु किया। त्रिवेणी ने अपनी रचनाओं में अहं की प्रवृत्तियों का चित्रण करते हुए शोषित स्त्री-समाज को झकझार कर जगादिया है। पुरुष के कामयज्ञ में दी जाने वाली नारी-बलि की करुण-कथाओं के चित्रण द्वारा लेखिका दलित-पीडित लांछित स्त्री समाज की वकालत करती हैं।

आधुनिक कन्नड साहित्य के क्षेत्र में श्रीमती त्रिवेणी से पहले कई लेखिकाओं ने कन्नड-साहित्य को समृद्ध किया है और उनके बाद भी सौकडों लेखिकाएँ कन्नड-भाषा की सेवा में संलग्न हैं। किन्तु उनमें त्रिवेणी का स्थान निराला है। आज भी त्रिवेणीजी आधुनिक कन्नड साहित्य की सर्वोत्कृष्ट लेखिका मानी जाती है। ऐसी महान लेखिका का निधन दि २६-७-१६६३ में हुआ तो कन्नड सारस्वत समाज पर एक आघात-सा हुआ।

रचनाएँ - त्रिवेणीजी के जीवन काल में ही तीन कहानी संग्रह और इक्कीस उपन्यास प्रकाशित हुए थे, जो निम्नांकित हैं -

१ कहानी-संग्रह - अ हेण्डतिय हेसरु (पत्नी का शुभनाम)
आ एरडु मनसु (दो मन)
इ समस्सेय मगु (मुसीबत का पुत्र)

उपन्यास

आधुनिक कन्नड साहित्य को त्रिवेणी ने इक्कीस उपन्यासों की देन दी है। जिनमें सोलह उपन्यास सामाजिक पारिवारिक है, चार उपन्यास मनोवैज्ञानिक और उनकी अंतिम रचना अवळ-मगळु (उसकी बेटी) अपूर्ण रही। आगे चलकर उनकी सहेली श्रीमती पद्मा ने उसे पूर्ण किया। उनके उपन्यास निम्नलिखित है-

१	हूवु-हण्णु	(फल फूल)
२	अपस्वर	(अपस्वर)
३	सोतु गेद्दवळु	(हार की जीत)
४	बेक्किन कण्णु	(बिल्ली की आँखे)
५	कीलुगोंबे	(कठपुतली)
६	दूरद बेट्ट	(दूर का परबत)
७	मोदल हेज्जे	(पहला कदम)
८	हृदयगीते	(हृदयगीत)
९	अपजय	(अपजय)
१०	कंकण	(कंकण)
११	मुक्ति	(मुक्ति)
१२	बेळ्ळिमोड	(रजत मेघ)
१३	अवळ मने	(उसका घर)
१४	तावरे कोळ	(कमल-पुष्कर)
१५	बानु बेळगितु	(उषा का आलोक)
१६	वसंत गान	(वसंत गीत)

१७ काशीयात्रे (काशीयात्रा)
१८ हण्णेले चिगुरिदाग (सूखी डाली में कोंपले)
१९ मुच्चिद बागिलु (बंद दरवाजा)
२० शरपंजर (शरपंजर)
२१ अवळ मगळु (उसकी बेटी)

इस प्रकार त्रिवेणी के उपन्यास हैं। त्रिवेणी के सभी उपन्यासों की विषय वस्तु स्त्री-पुरुष का प्रेम है। नारी की दृष्टि से स्त्री-पुरुष के प्रणय के विविध मुख, उनके उपन्यासों में प्रस्तुत किये गये हैं। प्रणय का मधुमय वातावरण, मधुर, व स्निग्धि प्रेम-प्रसंग, पारिवारिक जीवन के अनुसार बंधन और प्रेम के अन्य मनोहर सन्निवेश से उनके उपन्यास भरे पड़े हैं।

31.4.2 उपन्यास लेखिका त्रिवेणी

आधुनिक कन्नड साहित्य में त्रिवेणी की ख्याति का आधार स्तंभ उनके उपन्यास हैं। प्रधानतः वे उपन्यास साम्रज्ञी के रूप में ही याद की जाती है। फिर भी कहानी क्षेत्र को भी उनकी देन कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। असल में कहानियों की रचना से ही कन्नड साहित्य जगत् में प्रविष्ठ हुई है। त्रिवेणी विवाह से पहले लघु कथाएँ लिखी थीं।

सन् १९५० के आस-पास कोई महिलाएँ साहित्य कृषि में उभरी नहीं थी उसी समय त्रिवेणी ने साहित्य की श्रीवृद्धि की है, बल्कि महिलाओं के लिए सारस्वत मंदिर के द्वारा खोल दिये।

विवाह के बाद सबसे पहले त्रिवेणी अपस्वर उपन्यास की रचना की। इस उपन्यास की प्रकाशन के लिए कोई संपादक सामने नहीं आये। निरंजन जी इसके प्रकटन के लिए प्रयत्न किये परंतु बिना प्रकाशन के त्रिवेणी के हाथ आया। इससे त्रिवेणी को निराश हुई और भी उपन्यास लिखना प्रारंभ किया। पति शंकरजी के प्रयत्न से त्रिवेणी का दूसरा उपन्यास हूवु हण्णु (फल फूल) प्रकटन हुआ। इस उपन्यास की चारों तरफ धूम मच गई। इस कृति शंकरजी की सलाह, सूचना से

लिखी हुई कृतियों का प्रकाशन करने के लिए कई संपादक सामने आए। संपादकों में स्पर्धा होने लगी और आधुनिक कन्नड साहित्य में त्रिवेणी का नाम चिरपरिचित होने लगा। पति शंकरजी के साथ भारत की प्रमुख स्थानों की यात्रा की, विदेशियों की रहन-सहन, आचार-विचार की प्रत्यक्ष दर्शन करने की आकांक्षा त्रिवेणी के मन में जाग उठी और विदेश रूस देश की यात्रा करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। लेकिन बीमारी के कारण उस सुवर्ण अवसर का फल प्राप्त नहीं हुआ। जिससे वह निराश हो जाती है और उपन्यास के सृजन करने लगी। त्रिवेणी ने अपने उपन्यास के पात्रों के अंतरंग को प्रधानता देकर पात्र पोषण को नई मोड दी, उपन्यास के लिए नया विषय, नये क्षेत्र ढूँढ लिये। सहृदय को पुरुष के अनुभव से परे, पर स्त्री के लिए सहज-सुलभ भाव जगत की मनोहर प्रान्तभूमि के दर्शन कराये।

त्रिवेणी स्त्री की महिमा को स्थापित करना चाहती थी। अतएव उनकी रचनाओं में स्त्री के त्याग, स्थैर्य, सेवा-मनोभाव, औदार्य आदि का हृदयंगम चित्रण प्रस्तुत किया गया है। हम यह नहीं भूलना चाहिए कि त्रिवेणी नारी के चित्रण का नारी के द्वारा प्रयास है। अपनी अपूर्व लोकप्रियता से त्रिवेणी समग्र कर्नाटक के वाचक वृन्द का ध्यान समाज में नारी के स्थान-मान की ओर आकृष्ट करने में सफल हुई हैं। इससे बढ़कर कौन-सी सफलता हो सकती है।

31.4.3 कहानी और त्रिवेणी

भारतीय संस्कृति में आदि काल से लेकर आज तक आर्य नारी, साहित्य की समृद्धि में पुरुषों के साथ-साथ बटाँती आयी है। लेकिन साहित्य क्षेत्र में नारियों की देन अत्यल्प रहा है। आधुनिक कन्नड वाङ्मय के इतिहास में स्त्रियों के लिए साहित्य मंदिर के द्वारा खोलने का श्रेय श्रीमती त्रिवेणी को है। इस सदी के पाँच वर्ष कन्नड साहित्येतिहास में त्रिवेणी युग कहलाता है। यह वास्तव में लेखिका का युग है।

सन् १९५० ई से पूर्व भी कोडगु की गौरम्मा, वाणी, भारती, जयलक्ष्मी, श्रीनिवासन् आदि महिलाएँ सुंदर कहानियों के रचना द्वारा लोकप्रिय बन चुकी थी। फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि १९५० ई के पहले एक ही महिला का कथा

संकलन प्रकाशित हुआ था। इस समय में केवल १० वर्ष के अंदर त्रिवेणीजी ने ४१ कहानियाँ और इक्कीस उपन्यास प्रकाशित होकर प्रशंसनीय हुये हैं।

विषयवस्तु, आशय और सरलता की दृष्टि से कन्नड साहित्य में त्रिवेणी की देन प्रमुख है। उनके उपन्यासों में प्रामाणिकता, अभिव्यक्ति और सरलता का यथार्थ चित्रण है। त्रिवेणी की समकालीन महिला साहित्यकार वे हैं - एम के इंदिरा, अनुपमा निरंजन, एम सी पद्मा, आर्याभ पट्टाभी, एच एस पार्वती आदि। ये सभी महिला साहित्यकार, साहित्य क्षेत्र में लगी थी। इन सभी लेखिकाओं के बीच मधुर संबंध, समानता, मनोविश्लेषण यही सभी त्रिवेणी ने साहित्तय में अंकित किया है। वाणी, त्रिवेणी, इंदिरा, अनुपमा आदि महिला लेखिकाएँ - स्त्री समस्या, स्त्री शोषण, महिलाओं के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। रे लेखिकाएँ सभी अपनी-अपनी दृष्टि से इन समस्याओं को देखती थी।

त्रिवेणी मनोविश्लेषणात्मक, पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं को लेकर कथा साहित्य का सृजन किया। मनोवैज्ञानिक सूत्रों को लेकर साहित्य का निर्माण करना उनका वैशिष्ट्य था। लघु-कथाओं का सृजन करती हुयी कन्नड साहित्य में प्रवेश करने पर भी उपन्यास क्षेत्र में यश प्राप्त हुआ। शहर के शिक्षित परिवार की समस्याओं का उनकी रचनाओं में प्रामुख्यता, समाज-सुधार, स्त्री-स्वातंत्र्य, विधवा विवाह आदि समस्याओं खुलकर विरोध किया है। समाज की अनीति, अन्याय, भ्रष्टाचार, गरीबी, अज्ञान, स्त्री शोष आदि विषयों पर अपनी कलम चलाई है और उसके विरोध किया है।

लेखिका की सरस-भाषा और लुभोनेवाले संवाद, इसके सहायक है। त्रिवेणी में सहृदय को पात्रों के हृदयंतराल तक सहज ही पहुंचाने की अद्‌भुत क्षमता है। यह साहित्य राशि जीवंत पात्रों का विपुल भंडार है। त्रिवेणी ने पात्रों के हृदय के द्वारा खोल दिये है। त्रिवेणीजी पर कन्नड साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार त रा सु, अ न कृ, चदुरंग, कारंतजी का प्रभाव विशेष है। साथ ही हिन्दी कहानियों के जनक, उपन्यास साम्राट प्रेमचन्दजी का प्रभाव भी रहा है। हिन्दी, अंग्रेजी, बंगाली कथा साहित्य की रचनाओं की ओर त्रिवेणी की अभिरुचि भी थी।

आधुनिक कन्नड उपन्यास साहित्य में त्रिवेणीजी का विशेष स्थान रहा है। स्त्री क्या लिखती है ऐसी ईर्ष्या मनोभावना के परिसर से बाहर आकर अपनी लेखनी और कृति द्वारा अपार पाठकगणों की पसंद की साहित्यकार बनी। आगे आनेवाली लेखिकाओं को पथप्रदर्शक के रूप संप्रदाय को खोल दिया। त्रिवेणी की कहानियाँ कर्नाटक के घर-घर में सुनि जाती है। इसलिए त्रिवेणी एक प्रतिभाशाली एवं जनप्रिय लेखिका के नाम से ख्याती प्राप्त कर चुकी है।

31.4.4 लोकप्रियता

त्रिवेणीजी ने साहित्य क्षेत्र में दस वर्ष में ही अधिक लिखकर जनप्रिय लेखिका नाम से जन मानस में प्रसिद्धि पा चुकी थी। लेकिन दुर्भाग्य वश अकाल मृत्यु की शिकार हो गयी। इस अप्रिय समाचार सुनकर पाठकगण दुखी हुए। पूरे देश में अनेक संघ-संस्थाओं ने संताप-सूचक सभाओं को आयोजित किया। देश के प्रसिद्ध पत्र-परिकाएँ में त्रिवेणी पर अनेक लेखन प्रकट हुए। उनकी कहानियों पर अनेक स्पर्धाएँ एवं विचार गोष्टियों और चर्चाएँ स्पर्धा हुई। उनके साहित्य को अधिक पाठक-गण पढ़ने लगे और त्रिवेणी का नाम चिरपरिचित होने लगा।

त्रिवेणी की साहित्य रचनाओं पर कन्नड भाषी विद्वानों एवं अभिमानियों में आपसी भेद है। कुछ विद्वानों का कहना है - त्रिवेणी अपनी कथा-साहित्य द्वारा एक नवीन परंपरा को प्रारंभ किया, कहते है - दूसरे विद्वानों का कहना है - त्रिवेणी के कथा-साहित्य में पुरुषों के प्रति द्वेष भर हुआ है, स्त्रियों की रक्षा करना वह अपना उद्धेश्य समझती है।

त्रिवेणी अल्पायुष है, पति-पत्नी का दाम्पत्य जीवन सुखमय था। एक दूसरे परअपार विश्वास, प्यार, सहकार रखे हुये थे। कभी-कभी अपने कृति का या कोई समस्या असफल हो जाता तब वे कभी निराश निरुत्साह, सौजन्यशीलता से उसकी सामना करते थे। चित्रकला, पढ़ना-लिखने के शौक तो बाल्यकाल से ही था, नर्तन, नाटक, चलचित्र का शौक भी उन्हें थे। संगीत की तरफ ध्यान नहीं दिया, सैगल, कानन बाल। सुब्बलक्ष्मी के गीतों को उत्साह से सुनती थी। त्रिवेणी को राजकीय पर आसक्ति नहीं थी। समाज वर्ग समस्या आज के समाज

की व्यवस्था, पुरुष प्रधान है। पुरुषों के दबाव में आकर स्त्री शोषित हो रही है। स्त्री को समाज में सूक्त स्थान नहीं है। यह विचार अपने उपन्यासों के द्वारा व्यक्त किया है।

उदारवादी पति शंकरजी पत्नी को लिखने के लिए प्रोत्साह देते थे। उनके उपन्यास को विषय-वस्तु, सलाह-सूचना देते थे। उनकी कृतियों पर विमर्शा करते हुये अपना मन प्रकट करते थे। त्रिवेणी सरस-संवाद और पारिवारिक जीवन में उपन्यासकार के रूप में कई विमर्शक उसे पहचानते है। नौकर-चाकर के जीवन अनुभव, उनके पारिवारिक जीवन के सरस-विरस, स्वयं भोगी हुई धटनाओं को अपनी कृती में उतारती थी। बी एम श्री, वाणीजी के मार्गदर्शन पर साहित्य कृषि में आत्म विश्वास था।

रायचूर में आयोजित कन्नड साहित्य सम्मेलन में किये भाषण में त्रिवेणी-साहित्य में स्त्रियों का पात्र और आवश्यक सुविधाओं पर चर्चा करते हुए कहा था - स्त्री समस्या का परिणाम स्वरूप साहित्य सृजन का साहित्य हो सकता है तो केवल स्त्रियों के द्वारा ही हो सकता है। इसका प्रतिवाद किया था। जासूसी, ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की अपेक्षा उसके मन में थी। लेकिन अकाल मृत्यु के कारण नहीं लिख सकी।

समकालीन स्त्री लेखिकाएँ - एम के इंदिरा, अनुपमा निरंजन, एम् सी पद्मा, पंकज, आनंदी, शर्वाणी आदि साहित्यकारों के साथ स्नेह और संपर्क था। अपनी कृतियों पर हुए टीका, विमर्शा और टिप्पणियों को सौहार्दता से स्वगत एवं आत्मविमर्श कर लेती थी।

त्रिवेणी पुरुष द्वेषि नहीं थी, परंतु अपने पढ़ोसियों के पारिवारिक जीवन में होनेवाली घटनाओं को अपनी कल्पना शक्ति से अपनी कथाओं में स्थान दिया। त्रिवेणीजी को अपने उपन्यास का चलचित्र होने की, देखने की बहुत बड़ी अभिलाषा थी। जीतेजी उनके उपन्यास फिल्म नहीं बन सके, उनके देहांत के बाद बेक्किन कण्णु बिल्ली की ऑखें बेळ्ळि मोड रजत मेघ, हण्णेले चिगुरिदाग सूखी डालि में कोंपले शरपंजर इस उपन्यासों का चलचित्रों का निर्माण हुआ। यह फिल्म के

प्रशंसनिय रही हैं। त्रिवेणी की एक मात्र पुत्री है - उसका नाम मीरा मीरा के जन्म के ८ दिन में ही त्रिवेणी का देहांत हुआ था। उन्होंने अपनी पुत्री मीरा को साहित्यकार के रूप में देखने की सपना देखा था।

आधुनिक कन्नड साहित्य लोक में आज के साहित्य विकास में पुरुषों की महान् साधना के साथ-साथ महिलाओं की भी विशेष देन है। अपना वैयक्तिक उपन्यास कथा साहित्य का कन्नड साहित्य को देकर प्रख्यात महिला उपन्यासकारों की श्रेणी में अपना स्थान शाश्वत कर लिया है।

31.5 निष्कर्ष

कन्नड साहित्य को संवृद्ध बनाने में लेखिकाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रारम्भ में तो अक्कमहादेवी ने अपने वचनों से कन्नड की सेवा की। उसके बाद लम्बे समय तक नारी इस क्षेत्र से दूर ही रही। मगर आधुनिक युग में परिस्थिति में काफी परिवर्तन आ गया। चार दीवार में बंद नारी हर एक क्षेत्र में प्रविष्ट होने लगी खास कर साहित्य का क्षेत्र उसके लिए अनुकूल रहा। नारी समानता इन लेखिकाओं की माँग थी। फलस्वरूप आज नारी पुरुष के समकक्ष में उनके कंधों से कंधे मिलाकर काम कर रही हैं। त्रिवेणी, एम के इंदिरा, अनुपमा निरंजन आदि लेखिकाओं ने तो कन्नड कथा साहित्य में अपनी अलग पहचान बना ली है। आज भी अनेक लेखिकाएँ कन्नड साहित्य की सेवा करते हुए अपना योगदान दे रही हैं।

31.6 बोधप्रश्न

1) कन्नड की लेखिकाओं का सर्वेक्षण करते हुए एम के इन्दिरा का साहित्यिक परिचय प्रस्तुत कीजिए।
2) त्रिवेणी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
3) कन्नड साहित्य को समृद्ध बनाने में लेखिकाओं का क्या योगदान है विवेचन कीजिए।

31.7 नमूने का उत्तर

प्र : कन्नड की लेखिकाओं का सर्वेक्षण करते हुए एम के इन्दिरा का साहित्यिक परिचय प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर : कन्नड साहित्य में बारहवीं सदीं से ही साहित्य क्षेत्र में महिलाओं को देखा जाता है। उस समय बसवण्णा के आगमन से समाज के सभी वर्गों की महिलाओं को पुरुष के समान आदर और सुविधा मिली। फलस्वरूप कन्नड साहित्य क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश हो गया।

बारहवीं सदी की कवियित्रियों में अक्कमहादेवी का नाम सर्वप्रथम है। उन्होंने अपने साहित्य में नारी शोषण का विरोध और परम सत्ता का गुणगान किया है। लोकभाषा में उन्होंने पद्य शैली में जो कुछ कहा है वह सार्वकालिक सत्य के रूप में प्रचलित है। अक्कमहादेवी के साथ ही मोळिगे महादेवी, हडपद लिंगम्मा, उरिलिं कालम्मा, नीलांबिके, नागलांबिंके, गोग्गव्वे, किम्मव्वे, वीरम्मा, आयुदक्की लक्कम्मा रायम्मा, मुक्तायका, बोंतादेवी, लक्ष्मम्मा, कल्याणियम्मा, मसणम्मा, रेचम्मा, कायम्मा, गुड्डव्वे, गंगम्मा, रेम्मव्वा आदि ने अपने अनुभव के आधार पर जीवन तथ्य को पद्य के रूप में व्यक्त किया है।

इसके बाद कन्नड प्रदेश में मैसूर राजाओं तक कवयित्रियों का नाम सुनने नहीं आता है। विजयनगर राजाओं के प्रोत्साहन से सन १३६० में गंगादेवी ने वीर कपण्णरायचरित की रचना की थी। मैसूर महाराजा चिक्कदेवराज से प्रोत्साहित होन्नम्मा ने हदिबदेय धर्म, श्रृंगारम्मा ने पद्मिनी कल्याण, चेलुवांबे ने वरनंदी कल्याण और वेंकटाचल महात्मे लिखी हैं। अठारहवीं सदी में गलगली अव्वा ने श्रृंगार तारतम्य लिखा था। भागम्मा ने तृतीय स्कंध भागवत की रचना उद्धालिक के गीत, चंद्रहास चरित लिखे थे।

उन्नीसवीं सदीं में हरपनहल्ली भीमव्वा ने कृष्णध्यानामृत, नलचरित, शुक्रवार-शनिवार के गीत, सुधाम के गीत लिखे थे। चल्लम्मा ने रूक्मिणी परिणय लिखा था। सन्नबड़ति मणपक्का ने गोकर्ण महात्मे की रचना की है।

उन्नीसवीं सदी के अंत में राजनीतिक परिवर्तन के साथ स्त्रियों के स्थानमान में भी परिवर्तन हो गया। फलस्वरूप महिला साहित्य में नई रोशनी आयी। श्यामलादेवी बेलगाँवकर स्वतंत्रता पूर्व की लेखिकाओं में गिनी जाती हैं। हूबिसिलु इनका कथा-संकलन है। जयलक्ष्मी श्रीनिवासन ने सरोजिनी नलिनी नामक जीवनचरित्र लिखा था। मोग्गु कथा संकलन और परिणय उपन्यास इनकी रचनायें हैं। सरस्वतीबाई राजवाडेजी ने कहानी, लेखन और उपन्यास लिखे हैं।

सन् १९४९ में शांतादेवी मालवाड का मोग्गय माले कथा संकलन के साथ साहित्य क्षेत्र में प्रवेश हुआ। इनकी कुंकुमबल, कन्नड तायी, केळदी चेन्नम्मा, अक्कनागलांबिके, स्वाभिमानी बेलवडी नारी आदि बाईस से अधिक रचनाएँ हैं। इन्होंने रसपाक, सोबगिन मने, महिला अलंकार आदि महिलाओं के लिए उपयुक्त पुस्तकें भी लिखी हैं। साहित्य क्षेत्र में वाणी ने उपन्यासकार के रूप में अपना परिचय दिया है। इनका बिहुगडे, चिन्नद पंजर, मनेमगळु, अवळ भाग्य, अंजली, कावेरिय मडिलल्ली, बालेय नेरलु आदि उपन्यास प्रमुख हैं। एरडु कनसु, शुभमंगल, होस बेलकु चलनचित्र के रूप में लोकप्रिय हैं।

स्वतंत्र्योत्तर कालीन लेखिकाओं में त्रिवेणी अत्यंत प्रमुख हैं। उन्होंने हूहण्णु, शरपंजर, बेक्किन कण्णु, दूरद बेट्ट, अपस्वर, सोतु गेद्दवलु, अपजय, कीलु गोंबे, हण्णेले चिगुरिदाग, वसंतगान, कंकणमुक्ति, तावरेकोल, अवळ मगळु, आदि उपन्यास लिखे हैं। हेंडतिय हेसरु,समस्येय मगु आदि कथासंकलन भी प्रमुख हैं। सन् १९५४ में डॉ अनुपमा निरंजन ने उपन्यास लेखिका के रूप में साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया। संकोलेयोळगिंद, नूलुनेयगे, चित्र, हिमद-हू, आकाशगंगे, सस्यश्यामला, कोळचे कोंपेय दिनगलु आदि उपन्यास लिखे हैं। इन्होंने इसके साथ ही कथा संकलन और अनेक वैद्यकीय ग्रन्थ भी लिखे हैं।

नारी समस्या पर प्रकाश डालना उनका प्रमुख लक्ष्य है। स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं में गीता कुलकर्णी प्रमुख हैं। उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, शिशुसाहित्य आदि साहित्य के विविध क्षेत्रों में अपना योगदान दिया है। सन् १९६१ में आर्यांबा पट्टाभी ने उपन्यास के माध्याम से अपना परिचय दिया। होंगनसु, प्रियसंगप, एरडु मुख, सवति नेरलु आदि उपन्यासों के साथ कई कहानियाँ भी लिखी हैं। श्रीमती

शांतादेवी कणवी को कहानीलेखिका के रूप में पहचाना जाता है। सन् १९६८ में संजे मल्लिगे कथा संकलन के बाद अनेक कथा-संकलन प्रकाश में आये हैं। श्रीमती वीणा शांतेश्वर ने भी सन् १९६९ में नव्य लेखिका के रूप में प्रवेश किया। उन्होंने अनेक कथा संकलन, लघु उपन्यास आदि लिखे हैं। एच एस पार्वती ने भी अनेक उपन्यास, कहानियाँ लिखी हैं। वे हास्य-लेखिका के रूप में भी पहचानी जाती हैं। टी सुनंदम्मा भी हास्य लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हैं। जंबद चील, पेप्परमिंटु, बण्णद चिट्टे, तेनाली रामकृष्ण रचनाओं के साथ हास्य लेख, व्यक्ति चित्र रेडियो-रूपक भी लिखे हैं। एच वी सावित्रम्मा ने नारी शोषण के विविध रूपों को चित्रित करके कुछ हद तक पुरुषद्वेषी के रूप में साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया था। वे प्रचार-प्रसाद से दूर रहकर ही लिखती थीं। बण्डाय या विद्रोही साहित्य की प्रमुख लेखिका बी टी ललितानायक इस दौर की उल्लेखनीय लेखिका है। उन्होंने अपनी कहानियों में लमाणी समाज की अनेक समस्याओं का यर्थार्थ चित्रण किया है। उनकी कहानियाँ अपनी निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हैं। उनकी कहानियों में **कोले** नामक कहानी अत्यंत प्रभावशाली एवं लोकप्रिय है। अनुपमा निरंजन, ए पंकजा, पुष्पा एन राव, नीलादेवी, ईचनूर जयलक्ष्मी, ईचनूर शांता, अनुसूया रामरेड्डी, मंगला सत्यन्, प्रेमा भट्ट, रेखा काखंडकी, गिरिजा, गीता नागभूषण, बाई के संध्या शर्मा, अश्विनी, साईसुते, के सरोजा राव, सी एन जयलक्ष्मीदेवी, डॉ नलिनी मूर्ति, जयंतीबाई, बी। कामाक्षम्मा, डॉ कमला हंपना, डॉ एम आर उमादेवी, डॉ एच एस सुजाता, विजयलक्ष्मी, डॉ सरोजीनी महिषी, डॉ हेमा पट्टणशेट्टी, भुवनेश्वरी हेगडे आदि कन्नड साहित्य की प्रमुख लेखिकाएँ हैं। स्वातंत्र्योत्तर कन्नड लेखिकाओं की संख्या ज्यादा होती जा रही है। सुधा, प्रजावाणी, तरंग, तुषार, वनिता, गृहशोभा जैसी पत्रिकाओं में कहानी, उपन्यासों का प्रवाह ही बह रहा है।

एम के इन्दिरा

एम के इंदिरा का जन्म ५-१-१९१७ में मलेनाड के सुंदर प्रदेश तीर्थहल्ली में बनशंकरम्मा और सूर्यनारायणजी की पुत्री के रूप में हुआ। त्रयोदशी रोहिणी नक्षत्र और शुक्रवार गोधूलि के समय जन्म लेने से इनका नाम इंदिरा रखा गया था

तीर्थहल्ली उनका मायका था। जिस प्रकार उत्तर के पहाड़ी प्रदेश की अपनी विशेषता होती है, उसी प्रकार मलेनाड भी कर्नाटक के दक्षिण का पहाड़ी प्रदेश मुग्ध सरल सुंदर युवती के समान लज्जावान लगता है। उसी प्रकृति की गोद में जन्म लेने के कारण उनमें भी वहीमुग्धता थी।

एम के इंदिराजी ने ओपचारिक शिक्षा अधिक प्राप्त न करने पर भी प्रकृति से बहुत कुछ सीखा था। माध्यमिक स्कूल की दूसरी कक्षा आज की छठी कक्षा में ही उनकी औपचारिक शिक्षा अधूरी रहा गई। अध्ययन का भाग्य न मिलने का दुःख उनको अंत तक था। आरंभ मं उन्होंने अपने नाना लक्ष्मणरावजी से मुरली वादन सीखा था। इंदिरा ने अपनी नानी से गाना आदि भी सीखा था।

१९२९ में बारह साल की उम्र में ही इंदिराजी का विवाह मंडगद्दे कृष्णराव के साथ संपन्न हुआ। इस प्रकार वे स्वयं बाल्य विवाह का शिकार बन गई थी। स्कूल में पढ़ने की उम्र में पति के संप्रदायशील घर में उस बच्ची पर गृहिणी का पद संभालने की ज़िम्मेदारी आई थी। दुर्भाग्य के कारण इन के पति कृष्णराव अस्थमा रोग से पीडित हो गये और १-११-१९६९ में इनका देहान्त हो गया। पति की इच्छा के अनुसार साहित्य सृजन का कार्य इंदिराजी ने जारी रखा।

विभिन्न प्रभाव

घर के संस्कार, साहित्यिक वातावरण और मलेनाड के प्रकृति सौंदर्य से प्रभावित होकर एम के इंदिरा ने साहित्य सृजन कला को सहज रूप से अपनाया था। वे स्वयं समाज की कुप्रथा - बालविवाह का शिकार हो चुकी थी। इस कुप्रथा को समाज से दूर करने की इच्छा उनमें प्रखर थी। एम के इंदिराजी ने बचपन से रामायण-भारत पंचतंत्र आदि पढ़कर अपना ज्ञान बढ़ा लिया था। प्रेमांकुर उपन्यास से एम के इंदिरा प्रभावित हुई थीं। पत्र पत्रिकाएँ पुस्तकें पढ़ने में उनकी विशेष रुचि थी। साथ ही बचपन से नाटक सिनेमा आदि भी देखती थीं। इससे सुरुचि संपन्न साहित्य रचना करने की उनकी रुचि प्रबल होती गयी। कन्नड़ के श्रेष्ठ उपन्यासकारों के उपन्यासों से भी एम के इंदिरा प्रभावित हुई थीं। १९४६-४७ तक एम के इंदिराजी मंड्या में रहती थी। उसी समय में वे हिन्दी सीखने लगी।

कन्नड की ख्यात लेखिका त्रिवेणीजी भी उसी कक्षा में शामील हो चुकी थीं। वे दोनों स्नेह-सूत्र में बाँध चुकी थीं। त्रिवेणी नाम भी इंदिराजी ने ही प्यार से रखा था। त्रिवेणीजी का पहला नाम अनुसूया था। त्रिवेणीजी ने एम के इंदिराजी को साहित्य सृजन के लिए अधिक प्रोत्साहित किया।

नारी अपने शोषण के प्रतिकार रूप में ही समाज में प्रकट होती है। इस बात को एम के इंदिराजी भी मानती हैं। एम के इंदिराजी के समय नारी समस्याओं में फँस चुकी थी। तब नारी शोषण का अंत ही नहीं था। बाल विवाह से उस मुग्धा पर अत्याचार किया जाता था। उसी बालिका को दुर्भाग्य से यदि वैधव्य प्राप्त हो गया तो पुरुष उसे अपनी वासना का शिकार बनाता, और वही पुरुष उसी नारी को समाज से बहिष्कृत करने का प्रयत्न करता था। यदि नारी इस अन्याय के प्रति आवाज़ उठाने का प्रयत्न करेगी तो धर्म की आड़ में मठधिपतियों का सहारा लेकर उस अबला की आवाज़ बंद की जाती थी। वे जानते थे कि चरित्रवान मठधिपति बहुत कम थे। यदि नारी विकलांगा हो, तब पूछना ही क्या, उसे समाज में सभी लोग अनादर से देखते थे। ऐसी विषम परिस्थिति में एम के इंदिराजी ने कलम चलाना शुरू किया। वे भी उसी समाज की एक नारी थीं। उन पर भी कुछ बंधन था। फिर भी उन्होंने नारी शोषण के विरोध में आवाज़ उठायी थी। उन्होंने अपने संपूर्ण साहित्य द्वारा इस समस्या की गंभीरता को लोगों तक पहुंचाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने कहीं पुरुष पर व्यंग्य किया तो कहीं नारी को चेतावनी भी दी थी।

सामान्यतः साहित्यकार कोई भी अचानक प्रेरणा ग्रहण नहीं कर सकता। लेकिन समाज या संस्कृति की प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रेरणा साहित्यकार में सुप्त प्रतिभा के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। एम के इंदिराजी अपनी छियालीस साल की उम्र के बाद यकायक साहित्य सृजन में लगीं तो किसी न किसी प्रेरणा से ही लगी थीं। लेकिन मलेनाड ने प्रकृति माता की गोद में बिठाकर इंदिराजी को सहज ही सृजनशील बना दिया था। नगर के यांत्रिक जीवन और सामाजिक ज़िम्मेदारियों को स्वयं अनुभव करके उनमें पक्वता आई थी। ठीक उसी समय अपने परिवार का ही एक चित्र तुंगभद्रा उपन्यास के रूप में हमारे सामने रखा दिया। इस उपन्यास

की शैली, कथावस्तु का संगठन और संस्कृति के चित्रण से उनको अत्यधिक प्रशंसा और प्रोत्साहन मिला। तब से वे निरंतर लिखती रहीं। एम के इंदिरा को उनके पति कृष्णराव हमेशा प्रोत्साहन देते थे। वे साहित्य क्षेत्र से दूर रहने पर भी पत्नी को अपने व्यवसाय क्षेत्र के अनुभव बताकर लिखने की प्रेरणा देते थे। एम के इंदिरा की सहेली कन्नड साहित्य की श्रेष्ठ उपन्यास लेखिका त्रिवेणीजी ने भी इंदिराजी को साहित्य सृजन के लिए प्रोत्साहित किया था। कुवेंपु, कारंत आदि कन्नड के श्रेष्ठ साहित्यकारों का भी इंदिराजी पर प्रभाव पड़ा था।

साहित्य सृजन की प्रेरणा

कन्नड प्रदेश के जनसमुदाय का गौरव, पत्रकारों और प्रकाशकों का सहयोग तथा श्रेष्ठ साहित्यकारों का आशीर्वाद ही मेरी उन्नति के लिए कारंत बने - इस प्रकार एम के इंदिराजी ने एक समाचार पत्र में लिखा था।

इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी लिखा हैं - समाज में देखी सुनी बातों को ही लिखती हूँ। जो देखा है, सुना है या तो मेरा अनुभव ही होता है। बिना नींव के घर बनाना मैं नहीं जानती। कल्पना की आवश्यकता होती है, लेकिन वास्तविक घटनाओं का चित्रण प्रभावपूर्ण बनाने के लिए ही उसका स्थान रहना चाहिए। उनका अधिकांश साहित्य इसी वास्तविकता पर ही रचित है। घर की संस्कृति, मलेनाड की प्रकृति के बीच उनकी साहित्य- सृजन कला का विकास हुआ।

व्यकक्ति के व्यक्तित्व की पहचान उसके साहित्य द्वारा होती है। एम के इंदिराजी स्वभाव से स्नेही और शांत होने पर भी समाज में स्थित दुष्टताओं को दूर करने के लिए उन्होंने कटुता और व्यंग्य को अपनाया। उन्होंने नारी को शोषण का विरोध करनेवाली के रूप में चित्रण किया हैं। एम के इंदिराजी की अधिक रचनाओं में मलेनाडु के जन जीवन, वहाँ के रीति-रिवाज आदि अधिक उल्लेख हैं। उन्होंने नगर और ग्रामीण जीवन की तुलना भी की है। वे ग्रामीण जीवन को ही सुखी एवं निरातंक मानती हैं।

उन्होंने साठ से अधिक उपन्यास कथाएँ लिखी हैं, अनुभव को ही उन्होंने रचना की आधारभूमि माना था। असाधारण स्मरणशक्ति और अत्यंत मोहक शैली से

वर्णन करने की क्षमता उनमें थी। उन्होंने मानवीय मूल्य को अपनी रचनाओं में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। नारी उत्थान के साथ समाज का पुनरुत्थान भी उनका लक्ष्य रहा। ग्रामीण संस्कृति को नागरिक भाषा में व्यक्त करने की उनकी अपनी विशेषता थी। इसी कारण से वे अत्यंत लोकप्रिय बन सकीं।

रचना संसार

१९६३ के समय कन्नड साहित्य में नव्य साहित्य का ही अधिक प्रचलन था। उसका प्रभाव एम के इंदिराजी के साहित्य पर भी पड़ा। सामाजिक समस्याओं पर, विशेषकर नारी समस्या के प्रति उनकी सहानुभूति थी। उनमें प्रतिभा थी। इसी कारण उन्होंने सामाजिक, पारिवारिक समस्याओं को लेकर मलेनाड के जन-जीवन को जन भाषा में कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। एम के इंदिराजी को लिखना आर्थिक दृष्टि से भी जरूरी था। इसी कारण से उनके कई उपन्यास श्रेष्ठ हुए तो कुछ उतने प्रभावपूर्ण नहीं हुए। सदानंद, गेज्जेपूजे, नागवीणा, फणियम्मा, गिरिबाले जैसे अनेक श्रेष्ठ उपन्यासों के साथ उनकी साठ से अधिक रचनाओं का उल्लेख कर सकते हैं।

१ तुगभद्रा १९६३ - यह उनका प्रथम उपन्यसा है। इससे पहले उन्होंने १९६०-६१ में पश्चिम करावली नाम की एक कहानी मात्र लिखी थी। इस उपन्यास में तुंगा और भद्रा अंधी लड़कियों के सहज जीवन वृत्तांत के साथ मलेनाड के ब्राह्मण समाज की पारिवारिक जीवन गाथा भी है। कृष्णवेणी, मुद्दराम, और मथुरा, राघु के आदर्श प्रेम के साथ ही प्रकृति विकोप का भी चित्रण हुआ है। पारिवारिक घटनाओं को ही गूँथकर उपन्यास की रचना की है, लेकिन उपन्यास के तत्व के अनुसार यह एक श्रेष्ठ उपन्यास है।

२ सदानंद १९६५ - एम के इंदिरा के मामा के घर में एक बाल विधवा थी। उसीको कमला के रूप में देखते हुए उपन्यास लिखा है। वे कहती हैं - सदानंद एक आदर्श पात्र है, उसकी विचार धाराएँ मेरी अपनी विचार धाराएँ हैं। इस उपन्यास का उद्देश्य ही बालविधवा का पुनर्विवाह रहा है। बालविधवाओं की समस्याओं को समाज से दूर करने में जो कुछ बाधाएँ आती हैं, उनके सहज चित्रण के साथ ग्रामीण समाज में उसके प्रभाव को भी दर्शाया है।

३ गेज्जेपूजे (घुँघरू पूजा) १९६६ - यह उपन्यास कथा मैसूर में देखी हुई एक घटना पर आधारित है। वहाँ ब्राह्मण लड़का किसी वेश्या पर अनुरक्त था, पर सामाजिक बंधन के कारण दोनों मिल न सके। अंत में दोनों ने आत्महत्या कर ली थी। लेकिन इंदिराजी ने उपन्यास में परिवर्तन कर दिया है - चन्द्रा ही आत्महत्या करलेती है। प्रेमी सोमु और पिता चन्द्रशेखर के लिए चन्द्र का पात्र बलिदान के रूप में चित्रित हुआ है। यहाँ गेज्जेपूजे जैसी कुप्रथा पर भी व्यंग्य किया गया है।

४ मन तुंबिद मडदि (मन भायी पत्नी) - यह एक भावना प्रधान सामाजिक उपन्यास है। इसमें दहेज प्रथ का विरोध किया गया है। उपन्यास में नारी का स्वभाव और गृह जीवन का चित्रण है। प्रेमा और सुंदर का जीवन चित्रण ही उपन्यास में प्रमुख हो जाता है।

५ ब्रह्मचारी १९६७ - इस उपन्यास में कुलीन घराने की बहू तंगम्मा किसी बाबा के साथ भाग जाती है। इसका प्रभाव घर के सभी लोगों पर पड़ता है पति और सास तो दुख से मन जाते हैं। उसी घर का शिवा भाभी के दुराचरण से दुखी होकर ब्रह्मचारी बनता है। गिरिजा शिवा को ही अपना पति मान बैठती है। अंत में उसे भी ब्रह्मचारिणी ही रहना पड़ा।

६ हेण्णिन आकांक्षे (नारी की आकांक्षा) १९६८ - इस उपन्यास में एक नारी (लोला) की भावनाएँ और अमीर ग्रामीण परिवार की कथा है। लोला अपनी इच्छा से मुरली के साथ विवाह कर लेती है। घर की अनेक दुर्घटनाओं से दुखित अनंतय्या अंत में इस विवाह से खुश हो जाते है।

७ तापदिंद तंपिगे (धूप से छाया तक) १९६८ - इस उपन्यास में ग्रामीण युवक किसी भ्रामक नारी के प्रेम चक्र में फँसकर धोखा खाता है। दुखी होकर वह मलेनाड के अपने घर लौटता है। वहाँ गंगा के साथ उसका विवाह हो जाता है।

८ टु-लेट १९६८ - इस उपन्यास में किराए के मकान में रहने वालों की समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

९ तपोवनदल्ली (तपोवन में) १९६८ - इस उपन्यास में ढोंगी बाबा के ढोंग पर व्यंग्य किया गया है। ऐसे बाबओं के आश्रम में घटनेवाले अन्याय पापकर्म और उनके दुष्प्रभाव पर इस उपन्यास में प्रकाश डाला गया है।

१० गिरिबाले (पहाडी कन्या) १९६९ - यहाँ एक नारी शंकरी का त्याग, सहिष्णुता और मुग्धता को चित्रित किया गया है।

११ डॉक्टर १९६९ - इसमें पारिवारिक जीवन का ही चित्रण हुआ है। इंदिराजी ने यहाँ मलेनाड के ग्रामवासियों की मुग्धता का चित्रण दिया है।

१२ कलादर्शी १९६९ - इस उपन्यास में के कलाकार का जीवन कथा की चित्रण है। वह सौंदर्य में कला को ढूँढता हुआ मलेनाड पहुँचता है। वहाँ चिन्ना नाम की अपूर्व सुंदरी को देखकर उसीको अपनी कलादर्शिनी मानता है।

१३ नागवीणा १९६९ - इस उपन्यास में विलासिनी नारी के कारण होनेवाले बेटी के दुखान्त जीवन का चित्रण हुआ है। यहाँ जगदीश्वरी की भोग-लालसा के कारण भुवना दुखी हो जाती है। नारी के पवित्र प्रेम का भुवना में इंदिरा ने चित्रण किया है।

१४ बिदिगे चन्द्रम डोंकु (दूजा चाँद टेढा है)१९६९ - प्रस्तुत उपन्यास में वसंत का पाँव दुर्घटना के कारण नष्ट हो जाता है। यह जानकार भी विवशता से बृन्दा उसके साथ विवाह कर लेती है। बाद में पति के आदर्श गुण को देखकर कहती है - दूजा चाँद टेढ़ा होने पर चाँदनी में क्या फर्क़ पड़ता है

१५ मुसुकु (घूँघट)१९७० - इस उपन्यास में अनैतिक आचरण से उत्पन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इस समस्या के कारण भाई - बहन में प्रेम हो जाने के यथार्थ सत्य का यहाँ चित्रण हुआ है।

१६ आत्मसखी १९७१ - इसमें एम के इंदिराजी के नाना अरगद अनंत शर्माजी की जीवनकथा है। वे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शिष्य थे। उनके आदर्श, ज्ञान और सहिष्णुता का यहाँ चित्रण हुआ है।

१७ चिद्विलास १९७१ - इस उपन्यास में कॉलेज जीवन के छात्र - छात्राओं के स्वप्न और उनके भविष्य जीवन की कथा चित्रित है।

१८ यारु हितवरु (कौन हितू है)१९७२ - इसमें एक आदर्श युवक का चित्रण हुआ है। उससे रेणुका और शर्वाणी प्यार करती हैं। उनमें किसके साथ विवाह करना है, इसी विचार की चर्चा में ही उपन्यास कथा का विकास हुआ है।

१९ सुखांत १९७३ - इस उपन्यास में गृहकलह के कारण प्रेमियों में विरह हो जाता है। अंत में दोनों के एक साथ अपने जीवन का अंत करने के साथ उपन्यास का अंत होता है। राम और कमली के आदर्श प्रेम और विश्वास का यहाँ चित्रण हुआ है।

२० जातिकेट्टवळु (जातिभ्रष्ट) १९७३ - इस उपन्यास में जातिप्रथा पर व्यंग्य किया गया है। जाति के नाम पर होनेवाले सामाजिक शोषण पर यहाँ व्यंग्य है।

२१ शांतिधाम १९७३ - प्रशांत घर बच्चों के कुटिल स्वभाव के कारण किस प्रकार अशांत हो जाता है, इसका सहज चित्रण इस उपन्यास में देखा जाता है।

२२ कतेगार (कथाकर)१९७४ - इस उपन्यास में मूर्ति अपने मित्र मधुरनाथ पर कहानी लिखने की इच्छा रखता है। मधुरनाथ और नेत्रावती की कहानी लिखने में मूर्ति ही नेत्रावती से आकर्षिता होने लगता है। यहाँ मधुरनाथ से दूर रहकर दुख का अनुभव करने वाली नेत्रावती का ही पात्र चित्रण महत्वपूर्ण है।

२३ कूचुभट्ट (मूर्ख भट्ट) १९७५ - इस उपन्यास में विवेकहीन व्यक्ति काव्य में वर्णित सौंदर्य को ढूँढ़ते हुए समाज में अपहास्य का शिकार बनता है। अंत में उसका भ्रम दूर हो जाने का चित्रण हुआ है।

२४ वर्णलीले (वर्णलील) १९७५ - इस उपन्यास में कीर्तिनाथ और रसवंती के प्रेम भग्न हो जाने का और कीर्तिनाथ का विवाह निर्मला के साथ होने का विकास होता है।

२५ हसिउ (भूख) १९७५ - इस उपन्यास की कथा में घर से उपेक्षित एक नारी अंधे युवक के साथ विवाह कर लेती है। उपेक्षित व्यक्तियों की समस्याओं का चित्रण हुआ है।

२६ मधुवन १९७६ - इसे सदानंद उपन्यास का ही उत्तरार्ध कहा सकते हैं। यहाँ सदानंद गुण का चित्रण किया गया है।

२७ जाल १९७६ - इस उपन्यास में एक वासनाग्रस्त नारी के पापकर्म और अंत में व्यक्त उसकी ग्लानि का चित्रण है।

२८ फणियम्मा १९७६ - नाना की बहन की ही कथा को उपन्यास के रूप में लिखा है। वे नौ साल की उम्र में ही विधवा बनीं और बारह साल पर ही उनका केश मुंडन किया गया था। अपने सुदीर्घ जीवनकाल में उन्होंने इतनी लोकसेवा की थी कि, अपने बारे में सोचने को उन्हे समय ही नहीं था। वे १०२ साल तक जीवित थी। यह उपन्यास राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार से भी सम्मानित है। इसमें फणियम्मा के बचपन से अंत तक के जीवन वृत्तांत का चित्रण हुआ है।

२९ गुंड १९७७ - इस उपन्यास में गुंड नाम से प्रचलित मलेनाड के एक युवक की जीवनगाथा का चित्रण मिलता है।

३० मने कोट्टु नोडी (घर देकर देखो) १९७८ - अपने घर दूसरों के किराए पर देने से जो समस्याएँ आती हैं उनका हास्यपूर्ण शैली से चित्रण किया है।

३१ हू-बाण (पुष्प बाण) १९७८ - इस उपन्यास में माँ-बाप के प्रेम से वंचित नारी और पूरुष की प्रेम कथा का चित्रण हुआ है।

३२ ओन्दे निमिष (एक ही निमिष) १९७८ - मनुष्य के जीवन में अचानक धटित घटनाओं के परिणाम को इस उपन्यास में चित्रण किया गया है।

३३ आभरण (आभूषण) १९७९ - इस उपन्यास में एक बाल विधवा की करुणा कथा है।

३४ नूरोन्दु बागिलु (एक सौ एक दरवाज़े) १९८० - इस उपन्यास में अमरावती नाम की एक अमीर नारी की जीवन कथा चित्रित है। मलेनाड के लोगों का सरल शांत, मुग्ध, स्वभाव भी इस उपन्यास के रूप में चित्रित है।

३५ रसवाहिनी १९८० - इंदुमती और वेणु नाम के स्त्री पुरुष के मधुर दांपत्य जीवन का चित्रण ही उपन्यास के रूप में चित्रण है।

३६ पूर्वापर १९८१ - इस उपन्यास में पाश्चात्य और पूर्वात्य संस्कृति की तुलना में भारतीय संस्कृति की महत्ता को श्रेष्ठ कहने का विचार ही उपन्यास के रूप में चित्रित है।

३७ ताळिदवरु (सहनेवाले) १९८२ - इस उपन्यास में एक विधवा के सहिष्णु स्वभाव का चित्रण हुआ है।

३८ तग्गिनमने सीते १९८३ - इस उपन्यास में अज्ञान अंधश्रद्धा से भरे पुरुष शासित समाज में आनेवाली एक गंभीर, विवेकपूर्ण नारी का चित्रण हुआ है।

४० मनोमंदिर १९८३ - एक नारी की भग्न प्रेम-कथा और एक बाल विधवा के शोषण का मर्मस्पर्शी चित्रण इस उपन्यास में चित्रित है।

४१ सूत्रधारी १९८४ - इस उपन्यास में एक कलाकार की जीवन कथा का चित्रण हुआ है।

इसके अलावा उन्होंने नगबेकु नाम का हास्य लेख-संग्रह भी प्रकाशित किया है भारत के प्रवास कथन के अनुभव कुंज नाम की किताब में लिखा है १९८७। चलन चित्र जगत के अनुभव के आधार पर चित्र भारत नाम का सिनेमा लेख लिखा था। चित्रशिल्पी पुट्टण्ण कणगाल कन्नड भाषा के ख्यात सिनेमा निर्देशक का जीवन चरित्र भी उन्होंने लिखा है। हंसगान नाम का लघु निबंध संग्रह इन्होंने लिखा है।

उनका फणियम्मा उपन्यास एक दुखी नारी की जीवन-गाथा है। उसमें नारी की सभी समस्याओं पर प्रकाश डाल गया है। फणियम्मा का विवाह बचपन में ही होता है। अंधश्रद्धा और अज्ञान के कारण वह पति को देखने से पहले ही विधवा

बनती है। एक बालविधवा समाज में किस प्रकार अन्याय का शिकार हो जाती है, इसका स्पष्ट चित्रण दिया है। अंत में फणियम्मा में वैराग्य भाव दर्शाकर समाज पर कठोर व्यंग्य किया है। संप्रदाय की आड़ में दाक्षायणी नाम की एक बालविवाह का केशमुंडन करने के विचार में फणियम्मा ही विरोध करती है।

पुरुष अपने पाप को नारी पर आरोपित करके मूँछों पर ताव देते हुए नारी को विवशता में फँसा देता है। ऐसे अत्याचारियों पर एम के इंदिराजी ने व्यंग्य किया है। बालविधवा दाक्षायणी अपने देवर के कारण ही गर्भवती बनती है। उस शोषिता नारी को इसी बहाने घर से बाहर भेजने की तैयारी चलती है। तब वह शोषण को चुपचाप सहन करने के बदले में देवर का ही भंडा फोड़ती है। देवर से ही पुनः विवाह कराने का आग्रह भी करती है। यहाँ एम के इन्दिराजी ने नारी में धैर्य की आवश्यकता और शोषण का विरोध कनने की प्रवृत्ति को अपनाने की सलाह दी है। उन्होंने विकलांगता को शाप न समझाकर उसके प्रति मानवीय अनुकंपा रखने को कहा है। उनके मधुवन उपन्यास में अंबक्का विकलांग होने पर भी सद्गृहिणी के रूप में चित्रित है। सदानंद उपन्यास में बालविधवा कमली का पुनर्विवाह सामाजिक परिवर्तन का संकेत है। गेज्जेपूजे में उन्होंने वेश्या पर अपनी अनुकंपा व्यक्त की है। एम के इन्दिराजी के समय में समाज अज्ञान और अंधश्रद्धा से भरा था। इस अज्ञान के बीच नारी-शोषण व्यवस्थित रूप से चलता था। कहीं बालविधवा गर्भवती हो जाती तो उसके कारण कर्ता ही शृंगेरी मठ जाकर, उस विधवा को जाति से भ्रष्ट करते थे और समाज में उस अबला को सब की गुलामी करने की विवशता में फँसा दिया जाता था। मठ में धर्म रक्षक भी न्याय - अन्याय पर सोचने को समय व्यय नहीं करते थे। वे भी नारी शोषण को प्रोत्साहन देते थे। यहाँ एम के इंदिरा ने इस विचार पर ध्यानाकर्षित कर कहा है कि धर्मरक्षक स्वयं पुरुष थे किंतु उनके आचरण में पवित्रता नहीं थी। एम के इंदिरा के समाज में नारी गर्भवती हो या रोगी, उसके लिए हमेशा भरपूर काम रहता था। सुबह से रात तक वह काम करती ही रहती थी।

वैचारिकता

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्यकार उस दर्पण को सदा शुभ्र रखने का प्रयत्न करता है। इसलिए वह अपने विचारों को साहित्य के द्वारा व्यक्त करता है। एम के इंदिराजी को भी अपने समाज में परिवर्तन की इच्छी थी। इससे वे समाज को बदलने की आशा रखती थी। उन्होंने समाज में फैली हुई जातीय संकीर्णता को दूर करने की इच्छा व्यक्त की थी। वे मानव मात्र के प्रेम में विश्वास रखती थीं। फणियम्मा ब्राह्मण वर्ग की होने पर भी निम्न वर्ग की दलित नारी को बचाने के लिए मुसल्मान स्त्री के साथ दलित नारी के घर जाती है। उनका विचार है कि अज्ञान और अंधश्रद्धा से भरा यह समाज जातिधर्म के दंभी आचरणों को त्यागने पर अधिक विश्वास न करके वास्तविकता को समझाने को कहा है। बालविधवा फणियम्मा से लेखिका कहलवाती है - मेरा विवाह तो जन्मकुंडली की गणना के आधार पर ही हुआ था। उसमें मेरा सौभाग्यवती रहने का विचार कहाँ तक सत्य निकला।

एम के इंदिराजी के समय वहाँ का समाज अज्ञान से भरा था। समाज के लोगों में दो वर्ग अवश्य थे - एक शोषक और दूसरा शोषित। दूसरे वर्ग में सामान्यतः निम्न वर्ग कहलाने वाले शूद्र और नारी रहती थी। मठ और मठाधीशों की सहायता से धर्म की आड़ में भी इनका शोषण हो जाता था। अबला को विवशता में फँसाकर पुरुष उस पर अत्याचार करता था। वही पुरुष उस नारी को भ्रष्ट कहकर समाज से बाहर रखने को लालायित होता था। धर्माधीश उक्तोच लेकर पुरुष की इच्छा के अनुसार अबला नारी को ही धर्म भृष्ट कह देते थे। नारी की भ्रष्टता के लिए जो पुरुष प्रमुख था, उसे समाज में सभ्य समझा जाता था। ऐसे अमानवीय शोषण का एम के इंदिराजी ने प्रबल विरोध किया है। समाज में प्रचलित बालविवाह का उन्होंने विरोध किया। वे मानती हैं कि इस कुप्रथा से ही नारी शोषण का प्रारंभ होता है और यदि वह दुर्भाग्य से बाल विधवा हो जाती तो समाज उसे वेश्या बना देता है। उसकी संतान को अवैध कहकर उसपर भी अमानवीय शोषण शुरू हो जाता है।

अंतर्जातीय विवाह से सामाजिक संबंधों का विकास होने में एम के इंदिराजी का विश्वास था। वे वेश्याओं को समाज में उचित स्थान - मान देने के पक्ष में थीं। पुरुष अपनी वासना-पूर्ति के लिए नारी को वेश्या बनाता है। वही पुरुष वेश्या को समाज से दूर रखने की इच्छा रखता है। वेश्या भी मानवी है, उसकी भी इच्छा-अनिच्छा होती है। इसलिए मानवीय दृष्टिकोण से वेश्याओं को देखने का संदेश दिया है।

समाज में कपट सन्यासियों की संख्या अधिक हो रही है। धूर्त लोग इस रूप में अपनी धूर्तता को छिपाने का प्रयत्न करते हैं और समाज में सम्मानित होते हैं। इस समस्या को उन्होंने अपने तपोवनदल्ली उपन्यास में स्पष्ट किया है। ऐसे धूर्त बाबाओं से जागृत रहने की सलाह भी दी है।

विधवा के पुनर्विवाह को वे प्रात्साहन देती हैं। जिस प्रकार पत्नी की मृत्यु के तुरंत बाद पुरुष दूसरा विवाह कर लेता है। उसी प्रकार नारी के भी पुनर्विवाह की प्रथा समाज में लाने की इच्छा रखती हैं। इस विचार की पुष्टि में मधुवन उपन्यास में कमला नाम की बालविधवा का विवाह सदानंद के साथ हो जाता है।

एम के इंदिरा ने कभी भी पुरस्कार या सम्मान की कामना से साहित्य की सृजन नहीं किया था। फिर भी उनके साहित्य की मौलिकता को पहचानकर अनेक पुरस्कार एवं सम्मान उनको ही ढूँढ़ते हुए आ पहुँचे। १९६४ में उनको त्रिवेणी कथा स्पर्धा में विशेष पुरस्कार मिला। उनको १९७१ और १९६४ में क्रमशः शिवमोग्गा और चिकमगलोर जिला साहित्य सम्मेलन में सम्मानित किया गया था। उनको सन १९७६ में कर्नाटक राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९८० से १९८४ तक अखिल कर्नाटक लेखिकाओं के सम्मेलन में इनको सम्मानित किया गया था। सन १९८० से एम के इंदिराजी कर्नाटक सरकार द्वारा रु ५०० मासिक मान पुरस्कार के रूप में पाती रही थीं।

31.8 सहायक पुस्तकें

1. होसगन्नड साहित्य चरित्रे - एल. एस. शेषगिरिराव
2. नव्य साहित्य दर्शनद मुन्नडी - डा. शांतिनाथ देसाई
3. त्रिवेणी व्यकक्तित्व मत्तु साहित्य - एस. वी विमल
4. एम के इंदिरारवर साहित्य ओन्दु विमर्शे - शांता नवलगुंद

NOTES

इकाई 32

Unit 32

" कन्नड की वीर वनिताएँ "

इकाई की रूपरेखा

32.0 - उद्देश्य

32.1 - प्रस्तावना

32.2 - शातवाहन रानी नयनिका ।

32.3 - बादामी चालुक्य रानियाँ

32.4 - राष्ट्रकूट शासिकाएँ

32.5 - कल्याणी चालुक्यवंशी रानियाँ

32.5.1 - अक्कादेवी

32.5.2 - सोमेश्वर चालुक्य की रानियाँ

32.6 - वीर बल्लाळ की देवियाँ

32.6.1 - रानी उमादेवी

32.6.2 - चोळ महादेवी

32.7 - बेळवडी की मल्लम्मा

32.8 - बल्लाळ की रानी अब्बक्का

32.9 - केळदी चेन्नम्माजी

32.10 - मैसूर की रानी लक्ष्मम्मण्णी

32.11 - कित्तूर रानी चन्नम्मा

32.12 - निष्कर्ष

32.13 - बोध प्रश्न

32.14 - नमूने का उत्तर

32.15 - सहायक पुस्तकें

32.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में 'कन्नड की वीर वनिताओं' के संबंध में अध्ययन करेंगे । इस इकाई को पढने के बाद आप -

- कर्नाटक की वीर वनिताओं का सर्वेक्षण कर सकेंगे ।
- बादामी चालुक्य वंशी रानियों का परिचय प्राप्त करेंगे ।
- राष्ट्रकूट वंशीय रानियों के शौर्य और पराक्रम से अवगत हो जायेंगे ।
- कल्याणी चालुक्यवंशीय रानियों की साहसगाथा को समझ सकेंगे ।
- वीर बल्लळ की रानियों के पराक्रम को पहचान सकेंगे ।
- बेळवडी मल्लम्मा की वीर-गाथा से अवगत हो जायेंगे ।
- उल्लाळ की रानी अब्बक्कादेवी के देशप्रेम को समझ सकेंगे ।
- मैसूर की महारानियों की जीवन-गाथा से अवगत हो जायेंगे ।
- वीर रानी कित्तूर चन्नम्मा के त्याग और साहस को जान सकेंगे ।

32.1 प्रस्तावना

कर्नाटक अतिरमणीय प्रदेश है । वह वीरप्रसू है । उसकी पवित्र गोदी पर ऐसे कितने ही वीरों और वीराङ्गनाओं का जन्म हुआ है जिन्होंने मातृभूमि की सुरक्षा के लिए और प्रजा की भलाई के लिए शात्रुओं के आक्रमणों का सामना करने में अनन्य वीरता और अद्‌भुत बलिदान का परिचय दिया है । कर्नाटक के इतिहास के अनुशीलन से यह विदित होता है कि यहाँ शातवाहन, कदम्ब, गंग, चालुक्य, राष्ट्रकूट, होयसल, कलचूरि, ओडेयर जैसे सुप्रसिद्ध राजवंशों के यशस्वी राजाओं ने उत्तम रीति से शासन किया । कर्नाटक में उपलब्ध सैकडों शिला शासनों एवं ताम्र शासनों से पता चलता है कि यहाँ के राजवंश की बहू-वेटियाँ साहित्य, संगीत और नृत्यादि विविध कलाओ में प्रवीण होने के साथ ही राजनीति और युद्ध-कला जैसे गंभीर विषयों के प्रति भी अभिरूचि रखती थीं और इन विषयों में सुशिक्षित भी रहती थी। इतना ही नहीं कर्नाटक के इतिहास में ऐसी कितनी ही नारियों का भी उल्लेख मिलता है जो राज्य की बागडोर को अपने हाथों में लेकर सुव्यवस्थित रूप से शासन करने में सफल रहती थी । कुछ रमणियाँ तो अपने पुत्रों की अल्पवयस्कता

में स्वयं शासन संभालने में कुशल रहती थीं और उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य पर हुकूमत चलाने में भी अद्वितीय दक्षता दिखाती थीं । कर्नाटक की ये राजाङ्गनाएँ महिलोचित गुणों के साथ-साथ युद्ध और शासन की भी पूर्ण क्षमता रखती थीं । कई महिलाओं ने युद्ध में भाग लेकर शत्रुओं के छक्के छुड़ाकर अपने अनुपम साहस और अपार देशभक्ति का परिचय दिया है । इन वीर वनिताओं ने अपने साहसपूर्ण अद्‌भुत कार्यों से समस्त नारी-जगत का गौरव बढ़ा दिया है।

32.2 शातवाहन रानी नयनिका

कर्नाटक में वीर-महिलाओं और राजनीति-कुशल नारियों की परंपरा प्राचीन काल से ही प्रारंभ हो चुकी थी । ई. सन् से दो सौ वर्ष पूर्व ही कर्नाटक के शातवाहन साम्राज्य की रानी नयनिका ने अपने बालक राजकुमार के वयस्क होने तक स्वयं राज्य की देख-भाल और शासन किया । वह विन्ध्य पर्वत से कोंकण तक व्याप्त शातवाहन साम्राज्य के शासक शातकर्णी द्वितीय (184 - 128 ई. पू) की पत्नी थी और उसने नानघोट के गुफा-मन्दिर में एक शिला-लेख भी लिखवाया । कुशलता पूर्वक राज्य-भार को संभालकर इस वीर माता ने राजनीतिक क्षेत्र में अपने अद्वितीय साहस और योग्यता का परिचय दिया।

32.3 बादामी चालुक्य रानियाँ

कर्नाटक में बादामी चालुक्यों का शासन-काल अत्यंत वैभवपूर्ण माना जाता है । ई. सन् 540 से लेकर 757 तक इस वंश के शासकों ने सब के साथ सौहार्द भाव रखकर सुव्यवस्थित ढंग से राज्य का परिपालन करके देश की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए काफी प्रयत्न किया । इस राजवंश से संबन्धित कई शिला-लेख प्राप्त हुए हैं जिनसे यह अवगत होता है कि राजघराने की बहुत सी नारियाँ शासन-कार्य में सक्रिय भाग लेती थीं । प्रथम पुलिकेशी की धर्मपत्नी दुर्लभा देवी ने बादामी के आस-पास के कुछ प्रान्तों का शासन-कार्य स्वीकार करके अपनी हिम्मत और राज्य-व्यवहार में दक्षता का परिचय दिया था । बादामी चालुक्य द्वितीय पुलिकेशी की पुत्रवधू एवं चन्द्रादित्य नरेश की प्रिय महिषी विजयाम्बिका का नाम भी कर्नाटक

के इतिहास में स्मरणीय है । इतिहासकारों का कथन है कि सम्राट पुलिकेशी ने सावन्तवाडी को जीतने के पश्चात् उस भूभाग के शासन भार को अपनी पुत्रवधू विजयाबिंका को ही सौंप दिया था । वह भी बडी सामर्थ्य से इस जटिल कार्य का सफल निर्वहण करके प्रजा की प्रशंसा का पात्र बन गयी । पति की मृत्यु के बाद भी वह स्वतंत्र रूप से शासन - कार्य संभालती रही । एक ओर राजनीति की बागडोर को कुशलता से संभालती हुई, दूसरी ओर अपनी सशक्त लेखनी से संस्कृत-साहित्य की सेवा में भी वह तत्पर रहती थी । उसका एक घोषण-पत्र भी प्राप्त हुआ है और कुछ शिलालेखों से यह स्पष्ट होता है कि वह बार-बार विप्रजनों को भूदान दिया करती थी और प्रजा की भलाई में सदा तल्लीन रहती थी । आगे चलकर विजयादित्य सत्याश्रय (ई. सन् 696 - 734) के काल में लोकेतिनिम्मडि नामक साहसी महिला का नाम एक सफ़ल शासिका के रूप में उल्लिखित हुआ है।

कुछ वीर रमणियों ने तो पतियों की असहाय अवस्था में अथवा आपत्काल में अपने नाबालिग बच्चों की रक्षा करके, उनको योग्य शिक्षा प्रदान करके आवश्यक हो तो रणभूमि में भी प्रवेश करके अपने खोये हुए अधिकार को फिर प्राप्त किया । ऐसी नारियों में गंगवंशीय राजा दुर्विनीत की सुपुत्री और चालुक्य विजयादित्य की पत्नी का नाम चिरस्मरणीय है । दक्षिण भारत में पल्लव वंशीय शासकों एवं सामन्त गंग राजाओं के बीच आपस में जब कलह हो रहा था तब चालुक्य नरेश विजयादित्य ने गंग राजा दुर्विनीत की पुत्री से विवाह का संबन्ध जोड़ लिया । परन्तु राजनीति के क्षेत्र में उस समय की विषम परिस्थिति के कारण विजयादित्य को अपने जीवन का अधिकांश समय रणभूमि में ही बिताना पड़ा और अंत में शात्रुओं का सामना करते करते उसको अपने प्राणों से हाथ धोना पडा। शोचनीय अवस्था में विजयादित्य की गर्भिणी पत्नी को अपनी गर्भस्थ शिशु के रक्षणार्थ मुडिवेमु नामक गाँव में सोमयाजी विष्णुवर्धन के घर में रहना पड़ा। वहाँ पुत्र का जन्म हुआ। रानी ने कृतज्ञतापूर्वक आपत्काल के आश्रयदाता विष्णुवर्धन के नाम को ही पुत्र को दिया। यही बालक कीर्तिवर्मा के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस तरह गंग दुर्विनीत की पुत्री ने विषम परिस्थिति में भी निराश न होकर अपने पुत्र की रक्षा करके वंश के गौरव को अखंड बनाया । बचपन से ही अपने पुत्र को

शासन और युद्ध - कला में उसने शिक्षण प्रदान किया । जिन विद्रोही शत्रुओं से उसका पराभव हुआ और जो उसकी दुर्गति के कारणभूत शासक थे उन पल्लवों, कदंबों और गंगों को हराकर बादामी चालुक्य साम्राज्य को सुदृढ बुनियाद की पीठिका उसने स्थापित की । चालुक्य वंश की इस वीर माता ने अपने नवजात शिशु के उज्ज्वल भविष्य के अपने स्वप्न को अपने दृढ साहस से पूरा किया । यह कर्नाटक के लिए गर्व की बात है । गद्वाल ताम्र शासनों से भी मालूम होता है कि चालुक्य प्रथम विक्रमादित्य जब शत्रुओं से लड रहा था तब उसकी पत्नी गंगमहादेवी ने विशाल भूखण्डों को दान दिया और वह स्वयं कई बार युद्ध में भी शामिल हुई। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि सार्वभौम चालुक्य नरेश अपनी पत्नियों को राज्य-संचालन में भी निपुण बनाते थे जिस के कारण ये महिलाएँ राजनीतिक क्षेत्र में अपनी सेवा अर्पित करके अखंड यशोभागिनी हुई ।

32.4 राष्ट्रकूट शासिकाएँ

बादामी चालुक्यों के पतन के बाद कर्नाटक में राष्ट्रकूटों का बोलबाला था । इस वंश के राजाओं ने मलखेड या मान्यखेत नामक नगर को अपनी राजधानी बनाकर ई. सन् 753 से लगभग तीन सौ वर्षों तक शासन किया । इस वंश के एक प्रतापी नरेश ध्रुव ने दक्षिण में कावेरी नदी तक अपने राज्य की सीमा को बढाया। उसकी पत्नी शीलमहादेवी भी कर्नाटक की साहसी महिलाओं में एक मानी जाती है । वह अपने पति के विशाल राज्य की संयुक्त शासिका थी । पति की अनुमति लिये बिना ही उसको बड़े-बड़े अग्रहारों को दान में देने का अधिकार था । एक दान-पत्र में उसको परमेश्वरी, परम-भट्टारिका, पट्ट-महिषी बताया गया है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि शासन के विषय में उसका अधिकार पति के समान ही था और वह एक जनप्रिय शासिका थी ।

आगे चलकर दसवीं सदी के अंत में राष्ट्रकूट के तृतीय अमोघवर्ष के काल में उसकी वीरपुत्री रेवक निर्मिडि स्वतंत्र रूप से राज्यभार संभालती थी। उसका विवाह गंगवंश के शासक भूतुंग के साथ हुआ था । कई शिला-शासनों में इस साहसी महिला का उल्लेख हुआ है । केसरभावी शासनों में यह अंकित हुआ है कि

यह रमणी यडदोरे, तुल्वु, सेंकल आदि प्रदेशों की देखभाल करती थी । सन् 930 में तृतीय कृष्ण ने अपनी बहन रेवक निमिडि और उसके पति की सहायता से चोल वंशीय शत्रुओं का सामना करके कई युद्धों में विजय प्राप्त की । शासन कुशल यह वीर वनिता बड़ी उदारता से देवालयों और विप्रजनों को भूदान दिया करती थी और अपने शील चरित्र एवं प्रजावात्सल्य के कारण लोकप्रिय हुई।

32.5 कल्याणी चालुक्य वंशीय रानियाँ

32.5.1 चालुक्यवंश की अक्कादेवी

कर्नाटक के राजनीतिक इतिहास में कल्याण चालुक्यवंश की राजकुमारी अक्कादेवी का स्थान महत्वपूर्ण है । चालुक्य दशवर्मा और भागल देवी की कन्या अक्कादेवी से संबंधित दस शिला-शासन उपलब्ध हुए हैं । अक्कादेवी ने साहित्य, धर्म, शासन, युद्ध आदि विविध क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठता का परिचय दिया है । उसका विवाह कदम्ब मयूर वर्मा के साथ हुआ था । कुछ समय तक बनवासी का शासन करती थी और सन् 1047 के आस-पास उसने किसुगाडु और उसके आस-पास के प्रदेशों को भी अपने शासन का, केन्द्र-स्थान बनाया । किसुगाडु में शासन करते समय उसकी राजधानी विक्रमपुर था और यही नगर अरसीबीदि नाम से प्रसिद्ध हुआ । अनेक शिला शासनों में उसके नाम के साथ 'रणभैरवी', 'उच्चण्ड भैरवी' जैसी उपाधियाँ भी जोड़ी गयी हैं जिनसे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उसने बडे शौर्य के साथ युद्धों में भाग लिया होगा, परन्तु उन युद्धों के बारे में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । शिला-शासनों में पाये जानेवाले 'अरिनृपमुकुटघट्टित-चारू चरणारविन्दा' जैसे विशेषणों से यह मालूम होता है कि उसने कई शत्रुओं को रण-रंग में हराया होगा । कर्नाटक की वीरपरंपरा की अप्रतिम महिला थी अक्कादेवी।

शिला-शासनों के आधार पर कहा जा सकता है कि सेडि ग्राम भी उसके वीरोचित कार्यों का केन्द्र था और उसके अधीन कई नामी सामन्त, मण्डलेश्वर आदि अधिकारी भी थे ।. सन् 1010 से करीब 1064 तक अपने जीवन के दीर्घकाल को राजकीय क्षेत्र में ही उसने अपर्ति कर दिया । अक्कादेवी ने अपने युद्ध-कौशल और शासन-चातुर्य के कारण अमर यश प्राप्त किया है ।

32.5.2 सोमेश्वर चालुक्य की पत्नियाँ

प्रथम सोमेश्वर चालुक्य को (ई. सन् 1044-1068) अपने साम्राज्य की बुनियाद को सुदृढ बनाने के लिए खूब परिश्रम करना पड़ा और उसके जीवन का अधिकांश भाग युद्ध भूमि में ही बीत गया । उसकी अनुपस्थिति में राज्य का भार उसकी देवियों ने संभाला जिन में से केतला देवी, लच्चल देवी और चामल देवी प्रमुख मानी जाती हैं । इनकी बहादुरी और शासन-कुशलता का वर्णन शिला लेखों में वर्णित हैं । त्रिंभुवनमल्ल के नाम से प्रसिद्ध षष्ट विक्रमादित्य चालुक्य भी विख्यात शासक था । इंगलिंगे शासन (1094) से मालूम होता है कि सुकी अनेक पत्नियों में से एक जाकल देवी ने पति के साथ किसी युद्ध में भाग लेकर अपनी वीरता को प्रदर्शित किया । कदम्बराजवंश के जयकीर्ति की रानी 'मैळलमहादेवी' (ई. स. 1125) का नाम भी एक सफल शासिका के रूप में उल्लिखित है ।

32.6 वीरबल्लाळ की देवियाँ

कर्नाटक के इतिहास में होयसलों का शासन-काल अत्यंत महत्व पूर्ण माना जाता है । इन शासकों में से पराक्रमी नरेश था द्वितीय वीर बल्लाल जिसके सुशासन में होयसलों की कीर्तिपताका अत्युन्नत रहकर चारों ओर इरा विख्यात राजवंश की वीरतापूर्ण उपलब्धियों की घोषणा कर रही थी । कहा जाता है कि होयसल वंश के इस प्रतापी राजा की दस रानियाँ थीं जो अभिजात वंशों की कन्याएँ थीं और सगीत, नृत्य, साहित्य आदि कलाओं के साथ राजनीति जैसे गंभीर विषयों में भी निपुण थीं । वीरबल्लाळ से संबन्धित अधिकांश अभिलेखों में उसकी ज्येष्ठ पत्नी बम्मली देवी का प्रशंसात्मक उल्लेख मिलता है । 'विवेक-बृहस्पति', 'सकलबन्दीजन चिन्तामणि', 'पात्रचूडामणि', 'गीतनृत्य वाद्य सूत्र धारिणी' निजपदाभ्युदय दीपिका' इत्यादि उपाधियों से इस साध्वी महिला के बहुमुखी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है । वीरबल्लाळ की दूसरी पत्नी पद्मलदेवी का नाम भी परमादर के साथ स्मरणीय है क्योंकि उसने अपने पति के राज्य - कार्य में हाथ बँटाया और राज्य की उन्नति के लिए वह सदा सेवानिरत रहती थी ।

32.6.1 रानी उमादेवी

उमादेवी वीरबल्लाळ की प्रिय रानी थी जिसने अपने पराक्रम को कई बार प्रदर्शित किया । वह 'होराटगार्ति' अर्थात् युद्धशील, युद्धप्रिय रानी कही जाती है । उसके पिता केशवैय्या वीरबल्लाळ के अधीनस्थ एक राज्याध्यक्ष हेग्गडे था जो होयसल राज वंश के प्रति सदा कृतज्ञ तथा प्रजा - रक्षण में सदा तत्पर एक सुशिक्षित व्यक्ति था । यद्यपि उमादेवी का जन्म राजघराने में न हुआ था फिर भी वीरोचित जीवन से वह बचपन से ही अभ्यस्त हो चुकी थी और वीरबल्लाळ की अनेक रानियों में एकमात्र उसी ने खड्गधारण करके रणाङ्गण में पदार्पण किया । वह अपने वीर पति के कंधे से कंधा मिलाकर शत्रुओं पर टूट पडती थी कि वह 'वीरबल्लाळ की दृढभुजाओं में स्थित वीरलक्ष्मी' कही जाती थी । उमादेवी को मगरेमूनूर का राज्यभार सौंपा गया । उसका महाप्रधान था "कुमार पंडितैय्या" । दण्डनायक जो उमादेवी के राजकाज में मुख्य पात्र था । इन दोनों में माता-पुत्र का ऐसा एक आत्मीय संबन्ध जुड़ गया कि उमादेवी एक वीरमाता के समान अपने दण्डनायक को प्रोत्साहित करती थी । वीरबल्लाळ की दृष्टि सदा हानगल्लु के कदम्बों पर थी परन्तु उमादेवी की नज़र बेळगुत्ति के सिन्दरों के ऊपर केन्द्रित थी । बेळगुत्ति में उपलब्ध चार वीर-शिलाओं पर अंकित हुआ है कि उमादेवी ने तीन बार सिन्दरों पर बडे पराक्रम के साथ आक्रमण किया । विरोचित साहसी प्रवृत्ति, अदम्य युद्धोत्साह, घोडों पर सवार होकर शत्रुओं पर टूट पडना, गुप्त स्थानों में अपने को छिपाकर दुश्मनों पर वार करना - इस तरह युद्धकला के विविध पहलुओं में उसकी कुशलता का उल्लेख हुआ है । यद्यपि उमादेवी तीनों बार हार गयी फिर भी अपने क्षात्रतेज़स् को धूमिल होने न दिया । रण-भूमि से लौटते समय शत्रुओं की अपार धन-राशि को लूटकर ले जाया करती थी । इस तरह दुश्मनों से लड़ने-भिड़ने में विशेष रूचि रखनेवाली उमादेवी ने अपने संपूर्ण शासन - काल में बेळगुत्ति के सिन्दरों के लिए सिंह-स्वप्न बनकर, अपने पति होयसल नरेश की सहायिका बनकर, उसकी प्रिय महिषी बनकर अपना जीवन सार्थक बनाया । उमादेवी अपने धार्मिक कार्यों के लिए भी जनप्रिय हुई । उसकी वीरता और दानशीलता से कविगण भी प्रभावित हुए थे । कन्नड़ कवि रूद्र भट्ट ने अपने काव्य 'जगन्नाथ विजय' म

वीरबल्लाळ महाराज को स्तुति करते समय उसकी वीर पत्नी उमादेवी का भी उल्लेख किया है ।

32.6.2 चोल महादेवी

वीर बल्लाळ की और एक पत्नी थी 'चोल महादेवी' जो तमिल प्रदेश के चोलवंश की राजकुमारी थी । उसके साहसी मनोभाव से प्रभावित होकर वीरबल्लाळ ने केम्बाल का शासन-कार्य उसको सौंप दिया । उससे संबन्धित शिलालेखों से य हबात स्पष्ट होती है कि यद्यपि वह स्वतंत्र रूप से राज्य चलाने में समर्थ थी, परन्तु कभी कभी अधिक आतुरता दिखाकर बाद में उसके लिए पश्चात्ताप भी करती थी। एक बार कुछ दुर्जनों के बहकावे में आकर बेऊर नामक गाँव को घेरने के लिए अपनी सेना को आज्ञा दी । बेऊर के स्वामिनिष्ठ नायक केतमल्ल ने अपने गाँव का रक्षण करते करते प्राणार्पण किया । सही बात मालूम होने पर चोलदेवी पश्चात्ताप की आग में सुलगने लगी और केतमल्लके पुत्र को उसने धनराशि भी अर्पित की। चाहे जो भी हो चोलमहादेवी युद्ध से न डरनेवाली वीर और साहसी नारी थी जो लोगों के स्नेह और आदर का पात्र बनी । द्वितीय होयसल नरसिंह के काल में कोळिगनगट्टे नामक गाँव चोलमहादेवीपुर नाम से प्रसिद्ध हुआ । वीरबल्लाळ की छोटी रानी केतला देवी भी उसकी आर्थिक नीति और राजकीय निपुणता के लिए प्रशंसित हुई । ई सन् 1173 से 1220 तक वीबल्लाळ की साहसपूर्ण जीवन-यात्रा में सहभागी रहकर उसकी देवियों ने इतिहास के पृष्ठों में शाश्वत स्थान पाया है ।

32.7 बेळवडि की मल्लम्मा

कर्नाटक की वीर रमणियों की परंपरा में बेळवडि ईशप्रभु की रानी मल्लम्मा का स्थान महत्वपूर्ण है । वीरशैव राजवंशों में बेळवडि संस्थान भी एक था। बेलगाँव के पास में स्थित बेळवडि नामक गाँव उस समय वीरत्व को प्रकट करनेवाला एक सुप्रसिद्ध स्थान था और ई. सन् 1678 में यहाँ जो भयंकर युद्ध हुआ उससे इस स्थान का ऐतिहासिक महत्व जाना जा सकता है । करीब सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में ईशप्रभु नामक एक पराक्रमशाली शासक के अधीन में था

बेळवडी । ईशप्रभु की धर्मपत्नी थी मल्लम्मा जो विजयनगर पालेगारों (सामन्तों) में से एक स्वादि मधुलिंगनायक की सुपुत्री थी। विभिन्न शिलालेखों में यह वीरनारी विभिन्न अभिधानों से वर्णित हुई है - मल्लमाम्बा, सौभाग्यवती सावित्री, सावित्री बाई, मल्लव्वाई, मलपायी आदि । एक अभिलेख में उसकी प्रशंसा यों की गई है - मल्लम्मा को पातिव्रत्य में सती, परकोप में काली, रण में दुर्गा, राजतन्त्र में प्रमीलिका, सौन्दर्य में रति, विद्या में सरस्वती, विज्ञान में गार्गी और दान में कल्पलतिका कहते हैं।

एक बार महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी दक्षिण में तंजावूर को जीतकर जब वापस लौट रहा था तब ईशप्रभु के शासन के अधीनस्थ संपगाँव के पास अपनी सेना के साथ उसने डेरा डाला था । उस समय बेळवडि की ओर से शिवाजी के सैन्य-समूह को भोजनादि दैनिक व्यवहार की वस्तुओं को भेजने में कुछ अव्यवस्था हुई जिसके कारण शिवाजी के सैनिक आस-पास के गाँवों से गायें लूटने लगे । आगे यही युद्ध का कारण हुआ । इतिहास के कुछ ग्रंथों मे इस युद्ध के कई अन्य कारण भी बताये गये हैं । एक ग्रंथ मे कहा गया है कि इस युद्ध का मुख्य कारण यह था कि मल्लम्मा शिवाजी के धन-धान्य को लूटकर उन्हें बैलों पर लादकर ले गयी जिससे मराठे सैनिक रूठ गये । कारण चाहे जो भी हो मराठे सैनिकों ने ईशप्रभु के किले पर आक्रमण करने के लिए उसको घेर लिया । यद्यपि ईशप्रभु ने किले की सुरक्षा के लिए सब व्यवस्थाएँ की थीं, फिर भी शिवाजी के कुछ कूटनीतिज्ञ अधिकारियों ने कपट व्यवहार करके अपनी सेना को किले में घुमने दिया। दोनों सेनाओं के बीच घमासान लड़ाई हुई और ईशप्रभु ने वीर स्वर्गगति प्राप्त की ।

पति की मृत्यु से निराश होते हुए भी प्रजा की रक्षा को ही अपना प्रधान ध्येय मानकर पालने के शिशु की भी परवाह न करके मल्लम्मा आक्रमणकरियों के विरूद्ध युद्ध करने के लिए तैयार होने लगी । पीछे हटानेवाले अपने सैनिकों के भूजदण्डों को उत्साहभरे वचनों से भडकाकर मराठा योद्धाओं को किले से भगाकर दुर्ग के फाटक को उस वीर रमणी ने बन्द करवा दिया । एक स्त्री के हाथ से अपनी सेना की इस लज्जास्पद हार की खबर सुनकर शिवाजी का कोपावेश भडक उठा।

उसने दलपति दादाजी रघुनाथ के नेतृत्व में फिर से सेना भेजकर बेळवाडि को घिरवा दिया । किले के अन्दर रहनेवाली मल्लम्मा दुश्मनों के सब प्रकार के आघातों को सहने के लिए तैयार थी । करीब सताईस दिनों तक किले के द्वार बन्द ही रहे । लेकिन दीर्घकाल के इस घेराव के आरण किले के अन्दर भोजनादि सामग्रियों की भी कमी के कारण मल्लम्मा को द्वार खोलना पड़ा । दोनों सेनाओं के बीच भयानक युद्ध हुआ । घुड़सवार होकर रानी मल्लम्मा रणचण्डी के समान शत्रुओं पर टूट पड़ी । कपटी दादाजी पीछे से आकर मल्लम्मा के घोड़े के दोनों पाँवों को काट दिया । मल्लम्मा तो पृथ्वी पर गिर पड़ी परंतु अपने साहस को गिरने न दिया । नंगे पाँव जमीन पर ख़डी होकर आक्रमण कारियों पर तलवार चलाने लगी। घायल होकर जब वह बेहोश हुई तब उसी अवस्था में उसको बन्दी बनाकर शत्रु सैनिक शिवाजी के पास ले गये । वीरता के पुजारी और उदारमना शिवाजी अपने प्राणों की भी बाजी लगाकर युद्ध करनेवाली उस वीर महिला को देखकर हर्षित हुआ और अपने सैनिकों की करतूत के लिए पश्चात्ताप करने लगा । मल्लम्मा को मुक्त करके उसने उसकी भूरि प्रशंसा की और यह भी वादा किया के आगे वह उसके साथ भाई का व्यवहार करेगा । जीते हुए राज्य के 320 गाँवों को मल्लम्मा को देकर उसके पुत्र नागभूषण की सारी जिम्मेदारी को उसने सहर्ष स्वीकार किया । शिवाजी और बेलवड़ि के इस अपूर्व बान्धव्य-प्रसंग का एक प्रतिनिधि शिल्प यादवाड नामक स्थान में पाया जाता है। अपने गुरू श्री सिद्धवीर्य शिवाचार्य के प्रति अपार श्रद्धा रखनेवाली रानी मल्लम्मा धार्मिक कार्यो में भी निष्ठा रखती थी । शिवाजी के सैनिकों से मुठभेड़ करने के बाद वीरता की मूर्ति मल्लम्मा पैंत्तीस साल तक (सन् 1716) जीवित थी । कहा जाता है कि उस से संबन्धित एक वीर-शिला प्राप्त हुई है जिसका विवरण कन्नड़ साहित्य परिषत्पत्रिका (71-72/-21) में दिया गया है ।

32.8 उल्लाळ की रानी अब्बक्का

उल्लाळ की सुप्रसिद्ध रानी अब्बक्का देवी का उल्लेख गेजेटियर आफ इण्डिया में एक वीर शासिका के रूप में हुआ है । सोलहवीं शती के मध्यभाग में पश्चिम तट के गोवा के आस-पास पुर्तगालियों का बोलबाला था । अब्बक्का देवी का पति

इन पुर्तगालियों से मैत्री स्थापित करके उनको वार्षिक कर देता था । परन्तु स्वाभिमानिनी और साहसी रानी इसका विरोध करती ही रही । जब ये विदेशी आततायी अपने शासन-क्षेत्र को विस्तृत करने का प्रयत्न करने लगे तब वीर महिला अब्बक्का ने मलबार राज्य के प्रमुख शासकों से और सामन्तों से सुलह करके उसको रोकने का प्रयत्न किया । इस विषय में उसको अपने पति का भी विरोध करना पड़ा । जब पुर्तगाली सेना कण्णनूर के सामन्त से भिड़ने लगी तब अब्बक्का देवी ने उनको कर देना बन्द करके बड़े साहस के साथ अपना विरोध प्रकट किया । इन्हीं कारणों से मंगलोर के आस-पास के प्रदेशों पर पुर्तगालियों की चढाई होने लगी । इतना ही नहीं सन् 1555 में डोम आलवारस् नामक एक पुर्तगाली अफसर ने इक्कीस जहाजी सेनाएँ भेजकर रानी को पराजित करने की कोशिश की । इस तरह जब चारों ओर विपत्तियों के बादल मँडरा रहे थे तब भी रानी ने दृढता और साहस से सभी आघातों का सामना किया । अंत में कल्लिकोट के शासक ने रानी और पुर्तगालियों के बीच सुलह करवाकर विषम परिस्थिति को टाल दिया । इस तरह जीवन भर पुर्तगालियों से लड़ते-लड़ते अपने स्वाभिमान, दृढ संकल्प, देशभक्ति और साहसी स्वभाव के कारण रानी अब्बक्का देवी ने कर्नाटक के इतिहास में अमर स्थान पाया है ।

32.9 केळदि चेन्नम्माजी

कर्नाटक के विख्यात केळदि राजवंश का बहादुर और धर्मपरायण रानी चेन्नम्माजी का नाम इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अंकित हुआ है । प्रारंभ में विजयनगर सम्राटों के काल में केळदि एक छोटा सा सामन्त-राज्य था, परन्तु शीघ्र ही उसके सुयोग्य शासकों ने अपने भुजबल और पराक्रम से उसको एक प्रमुख और शक्तिशाली राज्य के रूप में विस्तृत कर दिया । शासन-कार्य के साथ-साथ केळदि के शासक हिन्दू धर्म और संस्कृति के संरक्षण और प्रचार में भी तत्पर रहते थे । केळदि शासकों ने ई. सन् 1499 से ई. सन् 1765 तक कर्नाटक के पश्चिमी समुद्रतटीय एवं मलनाडु के विस्तृत भूभाग पर सुचारू रूप से शासन किया । लिंगण्ण कवि के लोकप्रिय कन्नड़ चंपू-काव्य 'केळदि नृपविजयम्' में तथा चेन्नमाजी के सुपुत्र बसवराज

प्रथम द्वारा निर्मित संस्कृत के बृहदाकार ग्रन्थ 'शिवतत्वरत्नाकर' में इस राज-वंश का वर्णन मिलता है ।

रानी चेन्नम्माजी सोमशेखर नायक प्रथम (ई. 1663-71) की पत्नी थी और कोटीपुर के सिद्दप्पशेट्टि की पुत्री थी । पति के जीवनकाल में ही वह शासन-कार्य में भाग लेती थी और राज्य में शांति की स्थापना करने के लिए प्रयत्न शील रहती थी । कहा जाता है कि सोमशेखर नायक कुछ दुर्जनों के द्वारा मारा गया । पति की मृत्यु के पश्चात् रानी चेन्नम्मा को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । राज्य में ही जो विश्रृंखलता छायी हुई थी उसको दूर करके उसने आन्तरिक शत्रुओं को पहचानकर उनको दण्ड देने का साहस किया । उसकी शासन-सामर्थ्य और वीरता का यही सबूत है । इतना ही नहीं, बिजापुर सुलतान से कूटनीति का व्यवहार करके शत्रुओं के बाह्य आक्रमणों से अपने राज्य के सीमा-प्रान्तों को मज़बूत बनादिया । सीमा प्रान्तों के आतताइयों का सामना करके बड़ी धीरता से उन्हें हराकर उनसे हाथी - घोडे धन-राशि को लूटने में भी सफल हुई । उस वीर रमणी ने विद्रोही सामन्तों को हराकर उन्हें अपने वशं में कर लिया ।

रानी चेन्नम्माजी के साहसपूर्ण जीवन की अत्यधिक स्मरणीय घटना यह है कि छत्रपति शिवाजी के पुत्र राजाराम को उसने शत्रुओं से बचाकर उसकी रक्षा की । छत्रपति शिवाजी और मुगल सम्राट औरंगज़ेब के बीच पहले से ही वैमनस्य था। जब मुगल सैनिक राजाराम को पकड़ने के लिए उसका पीछा करने लगे तब अपने को बचाने के लिए कहीं भी सुरक्षित स्थान न पाकर राजाराम इधर-उधर भटकता रहा । अंत में निःसहाय अवस्था में राजाराम करूणामयी चेन्नम्मा जी की शरण में आया । अपने मंत्री-मण्डल के साथ गुप्त विचार-विनिमय करके चेन्नम्मा ने राजाराम और उसके परिजनों को आदर के साथ आंश्रय देकर औरंगज़ेब के सैनिकों के आघात से उन्हें बचाया । मुगल सेना के साथ लड़कर चेन्नम्मा ने उसकी पराजित भी कर दिया । राजाराम को शरण देने के लिए उसको औरंगज़ेब जैसे शक्तिशाली सम्राट का भी वैर मोल लेना पड़ा । अपने इस असाधारण साहस और वीरता के कारण वह सब की प्रशंसा का पात्र बन गयी और कन्नड़ के एक लोकगीत के रूप में चेन्नम्माजी से संबद्ध यह अपूर्व घटना अमर बन गयी है । यह

भी कहा जाता है कि औरंगज़ेब जो स्वयं एक नामी वीर था, चेन्नम्माजी के इस वीरतापूर्ण कार्य के बारे में सुनकर संतुष्ट हुआ और बहुमूल्य अभूषणादि भेजकर उसने इस वीररमणी का सम्मान किया । चेन्नम्माजी के शासन-काल में केळदि राज्य दुश्मनों के आघातों से मुक्त था और राज्य भर शांति का वातावरण था ।

केळदि चेन्नम्माजी धर्मालु वीरशैव नारी थी और मंदिरों, मठों और विप्रों को बार-बार दान दिया करती थी । वह देवी मूकांबिका की अनन्य भक्ती थी और 'शिवतत्वरत्नाकर' में मूकांबिका का ही अवतार कहकर उसकी प्रशंसा की गई है । इस देवी के मंदिर को विशाल भू-भागों का दान करके रानी चेन्नम्मा ने अपने ही नाम पर एक अग्रहार को भी स्थापित किया । वह निःसन्तान थी, अतः मरियप्प सेट्टी के सुयोग्य पुत्र बसवराज को गोद लेकर, उस पर अपने अपार वात्सल्य की वृष्टि करके उसको शासन-कार्य में प्रशिक्षण दिया और राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया। केळदि की गद्दी पर बैठने के बाद बसवराज ने अपने संस्कृत ग्रन्थ 'शिवतत्वरत्नाकर' में अपनी माता चेन्नम्माजी की वीरता का वर्णन करके उसको गौरवान्वित किया है ।

केळदि शासक बसवप्प नायक द्वितीय की महिषी वीरम्माजी का नाम भी कर्नाटक की वीर-रमणियों में उल्लेखनीय है । मयकोण्डा के युद्ध में जब बसवप्पा मारा गया तब शासन का भार वीरम्माजी को संभालना पड़ा । बसवप्प नायक द्वितीय की मृत्यु के बाद यद्यपि उसका पालित पुत्र चेन्नबसप्पा (1754-57) केळदि का राजा बना, फिर भी अनुभवी और साहसी विधवा रानी वीरम्मा ही राजकाज की देखरेख करती थी । चेन्नबसप्पा की भी मृत्यु हुई और वीरम्मा ने बांकापुर के संपन्न व्यापारी चेन्नवीरप्पा के पुत्र सोमशेखर को गोद लिया । सन् 1757 में इसका राज्याभिषेक हुआ । तदनन्तर भी वीरम्माजी ही दक्षता से शासन करती रही । प्रजा को सुखी रखने में तथा राज्य के संरक्षण में सदा प्रयत्न शील रहती थी । चित्रदुर्ग के राजा के सात मैसूर के हैदरअली ने सन् 1763 में बेदनूर पर आक्रमण किया । इस समरांगण में शत्रुओं से लड़ते-लड़ते वीरम्माजी पकड़ी गयी और उस वीर देशभक्त वनिता का सारा प्रयत्न निष्फल होकर केळदि राज्य मैसूर के अन्तर्गत आ गया । केलदि राजवंश की चेन्नमाजी और वीरम्माजी इन दोनों वीर रमणियों के नाम सदा स्मरणीय हैं ।

32.10 मैसूर की रानी लक्ष्मम्मण्णी

कर्नाटक के इतिहास में मैसूर की महारानी लक्ष्मम्मण्णी का एक विशिष्ट स्थान है । छोटी उम्र में ही उस का विवाह मैसूर के नरेश महाराजा इम्मडी कृष्णराज औडेयर से हुआ । उसी समय हैदर अली ने गुलामी से मुक्त होकर मैसूर के आस-पास अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था । कहा जाता है कि हैदर मैसूर आस्थान के हिन्दू अधिकारियों को षडयन्त्र रचकर दूर करके राज दरबार में अपना रोब जमाने लगा । महाराज और राजमाता को भी उसके सम्मुख विवश होना पड़ा। हैदरअली के वश में ही सारा सैन्य था । इस विषम परिस्थिति में कृष्णराज ओडेयर द्वितीय का भी देहान्त (सन् 1766) में हो गया । महाराजा ने अपनी मृत्यु के पहले पत्नी लक्षम्ममण्णी से मुसलमानों के पंजों से किसी न किसी तरह राज्य को छुडाकर उसका उद्धार करने का अनुरोध किया। पति के इस अंतिम आदेश को अपने जीवन का एकमात्र ध्येय मानकर निःसहाय अवस्था में भी उसके लिए वह जीतोड कोशिश करने लगी । कृष्णराज के बाद उसके पुत्र चामराज ओडेयर और नञ्जराज ओडेयर तो एक के बाद एक गद्दी पर बैठे । परन्तु हैदर अली ने इन्हें अपने हाथ की कठपुतलियाँ मानकर स्वेच्छा से शासन का कार्य चलाता रहा । सन् 1776 मे अल्पायु में जब चामराज ओडेयर का देहान्त हो गाय तो रिक्त सिंहासन पर बैठने के लिए कोई राजपुत्र न रहा । महारानी लक्ष्मम्ण्णी ने हैदर के इच्छानुसार खासा चामराज को गोद लिया ।

हैदरअली के देहान्त के बाद उसका पुत्र टीपू सुल्तान नवाब बना । ओडेयर वंश के गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए लक्ष्मम्मण्णी ने टीपू सुलतान के विरूद्ध अनेक योजनाएँ बनायीं, परन्तु उनमें सफल न हुई । महारानी बन्दी भी बनायी गयी और अंग्रेजों की सहायता पाने का उसका सारा प्रयत्न निष्फल हुआ । टीपू ने अपने को सुल्तान घोषित कर दिया । सन् 1796 में महाराजा खासा चामराज ओडेयर का भी देहावसान हो गया । उसके पुत्र मुम्मडि कृष्णराज ओडेयर की आयु सिर्फ तीन वर्ष की थी । जब टीपू ने उसको गद्दी पर विठाने से इनकार किया तब महारानी ने अंग्रेजों से प्रार्थना की । जनरल हैरिस के नेतृत्व में जब अंग्रेजी सेना आयी तब टीपू ने अंग्रेजों को बहकाकर सन्धि करने का प्रयत्न किया । महारानी ने इसका विरोध

करके सभी अंग्रेज अधिकारियों के पास पत्र भेज दिये । अन्त में टीपू युद्ध में मारा गया और 30 जून सन् 1799 में मुम्मडी कृष्णराज ओडेयर मैसूर के सिंहासन पर विराजमान हुए और मैसूर में हिन्दू राज्य की पुनः प्रतिष्ठा हुई । महारानी लक्ष्मम्मण्णी लगातार तीस वर्ष तक अपने पति की इच्छा को पूर्ण करने के लिए संग्राम करती रही और अंत में अपने दृढ संकल्प, अटूट देशभक्ति और अपूर्व वंश नुराग के कारण सफल हुई । उसने ओडेयर वंशीय राजा को गद्दी पर प्रतिष्ठित करके दीर्घकाल की अपनी तपस्या का फल प्राप्त किया ।

32.11 कित्तूर रानी चेन्नम्मा

भारतीय महिला - जगत् में कित्तूर की रानी चेन्नम्मा ऐसी एक उज्जवल तारिका है जिसने सैकड़ों हृदयों में देशभक्ति की ज्योति सुलगाकर उनके लिए स्वातंत्र्य-संग्राम का मार्गदर्शन किया है । कित्तूर चेन्नम्मा का नाम कर्नाटक के घर-घर में बड़े आदर के साथ लिया जाता है । आज से एक सौ तैंतीस साल पहले सन् 1857 में ब्रिटिशों के सर्वाधिकार के विरूद्ध 'सिपाही-कलह' के रूप में जो स्वातंत्र्य संग्राम इतिहास - प्रसिद्ध हुआ, कर्नाटक में उससे कुछ साल पूर्व ही उस महान संग्राम का श्रीगणेशहो चुका था । हाँ, त्याग की पुतली, वीरता की मूर्ति, कित्तूर की साध्वी रानी चेन्नम्मा ब्रिटिश आक्रमण के विरूद्ध तलवार उठाकर भीषण रणचण्डी दुर्गा के समान रणाङ्गण में कूद पड़ी और अबला कहलानेवाली नारी में छिपी हुई अपार आत्मशक्ति को उसने प्रदर्शित किया ।

चेन्नम्मा कित्तूर संस्थान के शासक मल्लसर्ज की द्वितीय पत्नी थी और बेलगाँव के पास के काकती दोलप्पा की पुत्री थी । मल्लसर्ज धार्मिक मनोभाव से युक्त वीरशैव था । और एक विशाल भूभाग पर वह शासन कर रहा था । उस समय राजनीतिक क्षेत्र में उथल-पुथल हो रही थी । एक और टीपू सुल्तान का आंतक छाया हुआ था । दूसरी ओर ब्रिटिश अधिकारी एक एक करके छोटे छोटे संस्थानों को अपने अधीनस्थ बना रहे थे । पुणे के आस पास बाजीराव पेशवे का अधिकार चल रहा था । ऐसे विषम वातावरण में मल्लसर्ज को विरोधियों का सामना करते करते जीवन बिताना पड़ा । सन् 1816 में उसकी मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र

लिगरूद्रसर्ज कित्तूर राज्य का उत्तराधिकारी बना । परन्तु शासन-कुशल चेन्नम्मा को ही राज्य की बागडोर संभालनी पड़ी । इतने में ब्रिटिशों ने पेशवे को वश में करके कित्तूर पर नज़र डाली । सन् 1818 में अंग्रेजी अधिकारी थामस मन्रो, कित्तूर भेजा गया और रानी चेन्नम्मा के द्वारा समझाये जाने पर भी लिंगरूद्रसर्ज ब्रिटिशों के बहकावे में आ गया । बचपन से ही क्षयरोग से पीडित लिंगरूद्रसर्ज निःसन्तान था और शीघ्र ही उसकी मृत्यु भी हो गयी । कित्तूर संस्थान को पराये हाथ में जाने से रोकने के लिए रानी ने मास्त मारडि गौडा के पुत्र को गोद लिया । परन्तु ब्रिटिशा अधिकारियों ने इसको नीति-विरूद्ध कहकर उसको स्वीकार नहीं किया ।

ऐसी हालत में कित्तूर राज्य फिर अस्त-व्यस्त होने लगा । परन्तु रानी ने धीरता के साथ सब कठिनाइयों का सामना किया और अपनी मातृभूमि तथा प्रजा की रक्षा करने के लिए वह कटिबद्ध थी । उसके स्वामिनिष्ठ सेवक भी स्वातंत्र्य सग्राम के लिए तैयार हो गये । सन् 1820 में कित्तूर की सेना अंग्रेजी सैनिकों पर टूट पड़ी और उसने फिरंगी गोलियों को अपने वश में कर लिया । इसी मुठभेड में चेन्नम्मा का अंगरक्षक अमटूर बाळप्पा घुड़सवार अधिकारी थ्याकरे पर गोली चलाकर उसको मार डाला । थ्याकरे को मारकर यद्यपि कित्तूर के सैनिक युद्ध में जीत गये, फिर भी कीत्तूर को इस के फलस्वरूप अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा । इस घटना से ब्रिटिशों का कोपावेश और भी तीव्र हुआ और वे कित्तूर के संस्थान को निर्मूल करने की ताक में थे । ऐसे संकट में भी रानी ने हिम्मत न हारी । सोलापुर, गुत्ति, मैसूर जैसे संस्थानों में कित्तूर की सहायता करने के लिए यद्यपि सैन्य तैयार थे । फिर भी अंग्रेजों ने सारे मार्ग बन्द करके उनको रोक लिया । इस तरह बाहरी सहायता माँगने के लिए भी जब कोई उपाय न था तब कित्तूर की इस निःसहाय स्थिति से लाभ उठाकर अधिकारी चेप्लिन के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने फिर कित्तूर पर आक्रमण किया । और किले पर फिरंगी गोलियों की सतत वर्षा होने लगी । किले का मुख्यद्वार वैरियों के हाथ में आ गया और कित्तूर के सैकडों वीर सैनिक समर में कूद पडे । इस समय रानी चेन्नम्मा ने जो शूरता दिखायी वह वर्णानातीत है । कित्तूर की लावणियों में और लोकगीतों में इस युद्ध का वर्णन किया गया है। राज्य के अन्दर भी कुछ देशद्रोही मौजूद थे जिनकी स्वार्थपरता, हीनता और षड्यंत्र

के कारण सन् 1824 में कित्तूर का पतन हुआ जिसके रक्षण के लिए चेन्नम्मा आजीवन लडती रही । चेन्नम्मा अपनी सौत वीरम्मा के साथ बन्दी बन गयी। स्वामिनिष्ठ रायण्णा ने चेन्नम्मा की रिहाई और राज्य की स्वतंत्रता के लिए युवकों की एक सेना भी तैयार की परन्तु ब्रिटिशों ने उसको पकड़कर मृत्युदंड दिया । सन् 1829 में निराशा की आग में सुलगते सुलगते चेन्नम्मा का देहान्त हुआ । भारत की एक उज्जवल तारिका अस्तंगत हुई । उसके साथ ही कित्तूर का वैभव भी मिट गया परन्तु ब्रिटिशों का विरोध करनेवाली प्रथम भारतीय महिला, भारत के स्वातंत्र्य संग्राम की नान्दी-स्थापना करनेवाली वीर नारी और ईस्ट इण्डिया कंपनी को भारतीय स्त्री-शक्ति का प्रथम पाठ सिखानेवाली कित्तूर रानी चेन्नम्मा का अपूर्व त्याग सदा स्मरणीय रहेगा ।

32.12 निष्कर्ष

इस तरह शातवाहन की रानी नयनिका से लेकर कित्तूर चन्नम्मा तक की अनेक वीर वनिताओं ने अपने शौर्य और साहस का परिचय दिया है। यह कर्नाटक ऐसी वीरवनिताओं से गौरवान्वित हो गया है। उनकी वीर गाथाएँ अब भी गायी जाती हैं।

32.13 बोध प्रश्न

प्र 1. कर्नाटक की वीर वनीताओं की साहस-गाथा पर एक लेख लिखिए।
2. चालुक्य एवं राष्ट्रकूट वंशीय वीर रानियों का परिचय प्रस्तुत कीजिए।
3. केळदि चेन्नम्माजी और कित्तूर रानी चेन्नम्माजी के वीर और साहसी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए ।

32.14 नमूने का उत्तर

प्र : चालुक्य एवं राष्ट्रकूटवंशीय वीर रानियों का परिचय प्रस्तुत कीजिए ।

उत्तर : कर्नाटक अतिरमणीय प्रदेश है । वह वीरप्रसू है । उसकी पवित्र गोदी पर ऐसे कितने ही वीरों और वीराङ्गनाओं का जन्म हुआ है जिन्होंने मातृभूमि की

सुरक्षा के लिए और प्रजा की भलाई के लिए शात्रुओं के आक्रमणों का सामना करने में अनन्य वीरता और अद्‌भुत बलिदान का परिचय दिया है। कर्नाटक के इतिहास के अनुशीलन से यह विदित होता है कि यहाँ शातवाहन, कदम्ब, गंग, चालुक्य, राष्ट्रकूट, होयसल, कलचूरि, ओडेयर जैसे सुप्रसिद्ध राजवंशों के यशस्वी राजाओं ने उत्तम रीति से शासन किया । कर्नाटक में उपलब्ध सैकडों शिला शासनों एवं ताम्र शासनों से पता चलता है कि यहाँ के राजवंश की बहू - वेटियाँ साहित्य, संगीत और नृत्यादि विविध कलाओ में प्रवीण होने के साथ ही राजनीति और युद्ध-कला जैसे गंभीर विषयों के प्रति भी अभिरूचि रखती थीं और इन विषयों में सुशिक्षित भी रहती थी। इतना ही नहीं कर्नाटक के इतिहास में ऐसी कितनी ही नारियों का भी उल्लेख मिलता है जो राज्य की बागडोर को अपने हाथों में लेकर सुव्यवस्थित रूप से शासन करने में सफल रहती थी । कुछ रमणियाँ तो अपने पुत्रों की अल्पवयस्कता में स्वयं शासन संभालने में कुशल रहती थीं और उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य पर हुकूमत चलाने में भी अद्वितीय दक्षता दिखाती थीं। कर्नाटक की ये राजाङ्गनाएँ महिलोचित गुणों के साथ-साथ युद्ध और शासन की भी पूर्ण क्षमता रखती थीं । कई महिलाओं ने युद्ध में भाग लेकर शत्रुओं के छक्के छुड़ाकर अपने अनुपम साहस और अपार देशभक्ति का परिचय दिया है । इन वीर वनिताओं ने अपने साहसपूर्ण अद्‌भुत कार्यों से समस्त नारी-जगत का गौरव बढ़ा दिया है।बादामी चालुक्य रानियाँ : कर्नाटक में बादामी चालुक्यों का शासन-काल अत्यंत वैभवपूर्ण माना जाता है । ई. सन् 540 से लेकर 757 तक इस वंश के शासकों ने सब के साथ सौहार्द भाव रखकर सुव्यवस्थित ढंग से राज्य का परिपालन करके देश की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए काफी प्रयत्न किया । इस राजवंश से संबन्धित कई शिला-लेख प्राप्त हुए हैं जिनसे यह अवगत होता है कि राजघराने की बहुत सी नारियाँ शासन-कार्य में सक्रिय भाग लेती थीं । प्रथम पुलिकेशी की धर्मपत्नी दुर्लभा देवी ने बादामी के आस-पास के कुछ प्रान्तों का शासन-कार्य स्वीकार करके अपनी हिम्मत और राज्य-व्यवहार में दक्षता का परिचय दिया था । बादामी चालुक्य द्वितीय पुलिकेशी की पुत्रवधू एवं चन्द्रादित्य

नरेश की प्रिय महिषी विजयाम्बिका का नाम भी कर्नाटक के इतिहास में स्मरणीय है । इतिहासकारों का कथन है कि सम्राट पुलिकेशी ने सावन्तवाडी को जीतने के पश्चात् उस भूभाग के शासन भार को अपनी पुत्रवधू विजयाबिंका को ही सौंप दिया था । वह भी बडी सामर्थ्य से इस जटिल कार्य का सफल निर्वहण करके प्रजा की प्रशंसा का पात्र बन गयी । पति की मृत्यु के बाद भी वह स्वतंत्र रूप से शासन - कार्य संभालती रही । एक ओर राजनीति की बागडोर को कुशलता से संभालती हुई, दूसरी ओर अपनी सशक्त लेखनी से संस्कृत-साहित्य की सेवा में भी वह तत्पर रहती थी। उसका एक घोषण-पत्र भी प्राप्त हुआ है और कुछ शिलालेखों से यह स्पष्ट होता है कि वह बार-बार विप्रजनों को भूदान दिया करती थी और प्रजा की भलाई में सदा तल्लीन रहती थी । आगे चलकर विजयादित्य सत्याश्रय (ई.सन् 696 - 734) के काल में लोकेतिनिम्मडि नामक साहसी महिला का नाम एक सफ़ल शासिका के रूप में उल्लिखित हुआ है ।

कुछ वीर रमणियों ने तो पतियों की असहाय अवस्था में अथवा आपत्काल में अपने नाबालिग बच्चों की रक्षा करके, उनको योग्य शिक्षा प्रदान करके, आवश्यक हो तो रणभूमि में भी प्रवेश करके अपने खोये हुए अधिकार को फिर प्राप्त किया । ऐसी नारियों में गंगवंशीय राजा दुर्विनीत की सुपुत्री और चालुक्य विजयादित्य की पत्नी का नाम चिरस्मरणीय है । दक्षिण भारत में पल्लव वंशीय शासकों एवं सामन्त गंग राजाओं के बीच आपस में जब कलह हो रहा था तब चालुक्य नरेश विजयादित्य ने गंग राजा दुर्विनीत की पुत्री से विवाह का संबन्ध जोड़ लिया । परन्तु राजनीति के क्षेत्र में उस समय की विषम परिस्थिति के कारण विजयादित्य को अपने जीवन का अधिकांश समय रणभूमि में ही बिताना पड़ा और अंत में शात्रुओं का सामना करते करते उसको अपने प्राणों से हाथ धोना पडा। शोचनीय अवस्था में विजयादित्य की गर्भिणी पत्नी को अपनी गर्भस्थ शिशु के रक्षणार्थ मुडिवेमु नामक गाँव में सोमयाजी विष्णुवर्धन के घर में रहना पड़ा। वहाँ पुत्र का जन्म हुआ। रानी ने कृतज्ञतापूर्वक आपत्काल के आश्रयदाता विष्णुवर्धन के नाम को ही पुत्र को दिया। यही बालक कीर्तिवर्मा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस

तरह गंग दुर्विनीत की पुत्री ने विषम परिस्थिति में भी निराश न होकर अपने पुत्र की रक्षा करके वंश के गौरव को अखंड बनाया। बचपन से ही अपने पुत्र को शासन और युद्ध - कला में उसने शिक्षण प्रदान किया । जिन विद्रोही शत्रुओं से उसका पराभव हुआ और जो उसकी दुर्गति के कारणभूत शासक थे उन पल्लवों, कदंबों और गंगों को हराकर बादामी चालुक्य साम्राज्य को सुदृढ बुनियाद की पीठिका उसने स्थापित की । चालुक्य वंश की इस वीर माता ने अपने नवजात शिशु के उज्ज्वल भविष्य के अपने स्वप्न को अपने दृढ साहस से पूरा किया । यह कर्नाटक के लिए गर्व की बात है । गद्वाल ताम्र शासनों से भी मालूम होता है कि चालुक्य प्रथम विक्रमादित्य जब शत्रुओं से लड रहा था तब उसकी पत्नी गंगमहादेवी ने विशाल भूखण्डों को दान दिया और वह स्वयं कई बार युद्ध में भी शामिल हुई। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि सार्वभौम चालुक्य नरेश अपनी पत्नियों को राज्य-संचालन में भी निपुण बनाते थे जिस के कारण ये महिलाएँ राजनीतिक क्षेत्र में अपनी सेवा अर्पित करके अखंड यशोभागिनी हुई ।

राष्ट्रकूट शासिकाएँ

बादामी चालुक्यों के पतन के बाद कर्नाटक में राष्ट्रकूटों का बोलबाला था । इस वंश के राजाओं ने मलखेड या मान्यखेत नामक नगर को अपनी राजधानी बनाकर ई. सन् 753 से लगभग तीन सौ वर्षों तक शासन किया । इस वंश के एक प्रतापी नरेश ध्रुव ने दक्षिण में कावेरी नदी तक अपने राज्य की सीमा को बढाया। उसकी पत्नी शीलमहादेवी भी कर्नाटक की साहसी महिलाओं में एक मानी जाती है । वह अपने पति के विशाल राज्य की संयुक्त शासिका थी । पति की अनुमति लिये बिना ही उसको बड़े-बड़े अग्रहारों को दान में देने का अधिकार था । एक दान-पत्र में उसको परमेश्वरी, परम-भट्टारिका, पट्ट-महिषी बताया गया है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि शासन के विषय में उसका अधिकार पति के समान ही था और वह एक जनप्रिय शासिका थी ।

आगे चलकर दसवीं सदी के अंत में राष्ट्रकूट के तृतीय अमोघवर्ष के काल में उसकी वीरपुत्री रेवक निर्मिडि स्वतंत्र रूप से राज्यभार संभालती थी। उसका विवाह गंगवंश के शासक भूतुंग के साथ हुआ था । कई शिला-शासनों में इस

साहसी महिला का उल्लेख हुआ है । केसरभावी शासनों में यह अंकित हुआ है कि यह रमणी यडदोरे, तुल्वु, सेंकल आदि प्रदेशों की देखभाल करती थी । सन् 930 में तृतीय कृष्ण ने अपनी बहन रेवक निमिडि और उसके पति की सहायता से चोल वंशीय शत्रुओं का सामना करके कई युद्धों में विजय प्राप्त की । शासन कुशल यह वीर वनिता बड़ी उदारता से देवालयों और विप्रजनों को भूदान दिया करती थी और अपने शील चरित्र एवं प्रजावात्सल्य के कारण लोकप्रिय हुई।

कल्याणी चालुक्य वंशीय रानियाँ

चालुक्यवंश की अक्कादेवी : कर्नाटक के राजनीतिक इतिहास में कल्याण चालुक्यवंश की राजकुमारी अक्कादेवी का स्थान महत्वपूर्ण है । चालुक्य दशवर्मा और भागल देवी की कन्या अक्कादेवी से संबंधित दस शिला-शासन उपलब्ध हुए हैं । अक्कादेवी ने साहित्य, धर्म, शासन, युद्ध आदि विविध क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठता का परिचय दिया है । उसका विवाह कदम्ब मयूर वर्मा के साथ हुआ था । कुछ समय तक बनवासी का शासन करती थी और सन् 1047 के आस-पास उसने किसुगाडु और उसके आस-पास के प्रदेशों को भी अपने शासन का, केन्द्र-स्थान बनाया । किसुगाडु में शासन करते समय उसकी राजधानी विक्रमपुर था और यही नगर अरसीबीदि नाम से प्रसिद्ध हुआ । अनेक शिला शासनों में उसके नाम के साथ 'रणभैरवी', 'उच्चण्ड भैरवी' जैसी उपाधियाँ भी जोड़ी गयी हैं जिनसे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उसने बडे शौर्य के साथ युद्धों में भाग लिया होगा, परन्तु उन युद्धों के बारे में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । शिला-शासनों में पाये जानेवाले 'अरिनृपमुकुटघट्टिन-चारू चरणारविन्दा' जैसे विशेषणों से यह मालूम होता है कि उसने कई शत्रुओं को रण-रंग में हराया होगा । कर्नाटक की वीरपरंपरा की अप्रतिम महिला थी अक्कादेवी ।

शिला-शासनों के आधार पर कहा जा सकता है कि सेडि ग्राम भी उसके वीरोचित कार्यों का केन्द्र था और उसके अधीन कई नामी सामन्त, मण्डलेश्वर आदि अधिकारी भी थे ।. सन् 1010 से करीब 1064 तक अपने जीवन के दीर्घकाल को राजकीय क्षेत्र में ही उसने अपर्ति कर दिया । अक्कादेवी ने अपने युद्ध-कौशल और शासन-चातुर्य के कारण अमर यश प्राप्त किया है ।

सोमेश्वर चालुक्य की पत्नियाँ

प्रथम सोमेश्वर चालुक्य को (ई. सन् 1044-1068) अपने साम्राज्य की बुनियाद को सुदृढ बनाने के लिए खूब परिश्रम करना पड़ा और उसके जीवन का अधिकांश भाग युद्ध भूमि में ही बीत गया । उसकी अनुपस्थिति में राज्य का भार उसकी देवियों ने संभाला जिन में से केतला देवी, लच्चल देवी और चामल देवी प्रमुख मानी जाती हैं । इनकी बहादुरी और शासन-कुशलता का वर्णन शिला लेखों में वर्णित हैं । त्रिंभुवनमल्ल के नाम से प्रसिद्ध षष्ट विक्रमादित्य चालुक्य भी विख्यात शासक था । इंगलिंगे शासन (1094) से मालूम होता है कि सुकी अनेक पत्नियों में से एक जाकल देवी ने पति के साथ किसी युद्ध में भाग लेकर अपनी वीरता को प्रदर्शित किया । कदम्बराजवंश के जयकीर्ति की रानी 'मैळलमहादेवी' (ई. स. 1125) का नाम भी एक सफल शासिका के रूप में उल्लिखित है ।

32.15 सहायक पुस्तके

1. कर्नाटक साहित्य मत्तु संस्कृति दर्शन - स. स. मळवाड
2. कर्नाटक चरित्रे - कन्नड विश्वविद्यालय

NOTES

ಆದೇಶ ಸಂಖ್ಯೆ : ಕರಾಮುವಿ/ಅಸಾವಿ/4–060/2013–2014 ದಿನಾಂಕ : 24–09–2013
ಒಳಪುಟ : 60 GSM MPM ವೈಟ್ ಪ್ರಿಂಟಿಂಗ್ ಪೇಪರ್ ಮತ್ತು ಹೊರಪುಟ: 170 GSM ಆರ್ಟ್‌ಕಾರ್ಡ್
ಮುದ್ರಕರು : ಅಭಿಮಾನಿ ಪಬ್ಲಿಕೇಷನ್ ಲಿ., ಬೆಂಗಳೂರು–10 ಪ್ರತಿಗಳು : 1200

Karnataka State Open University

Manasagangotri Mysore - 570 006

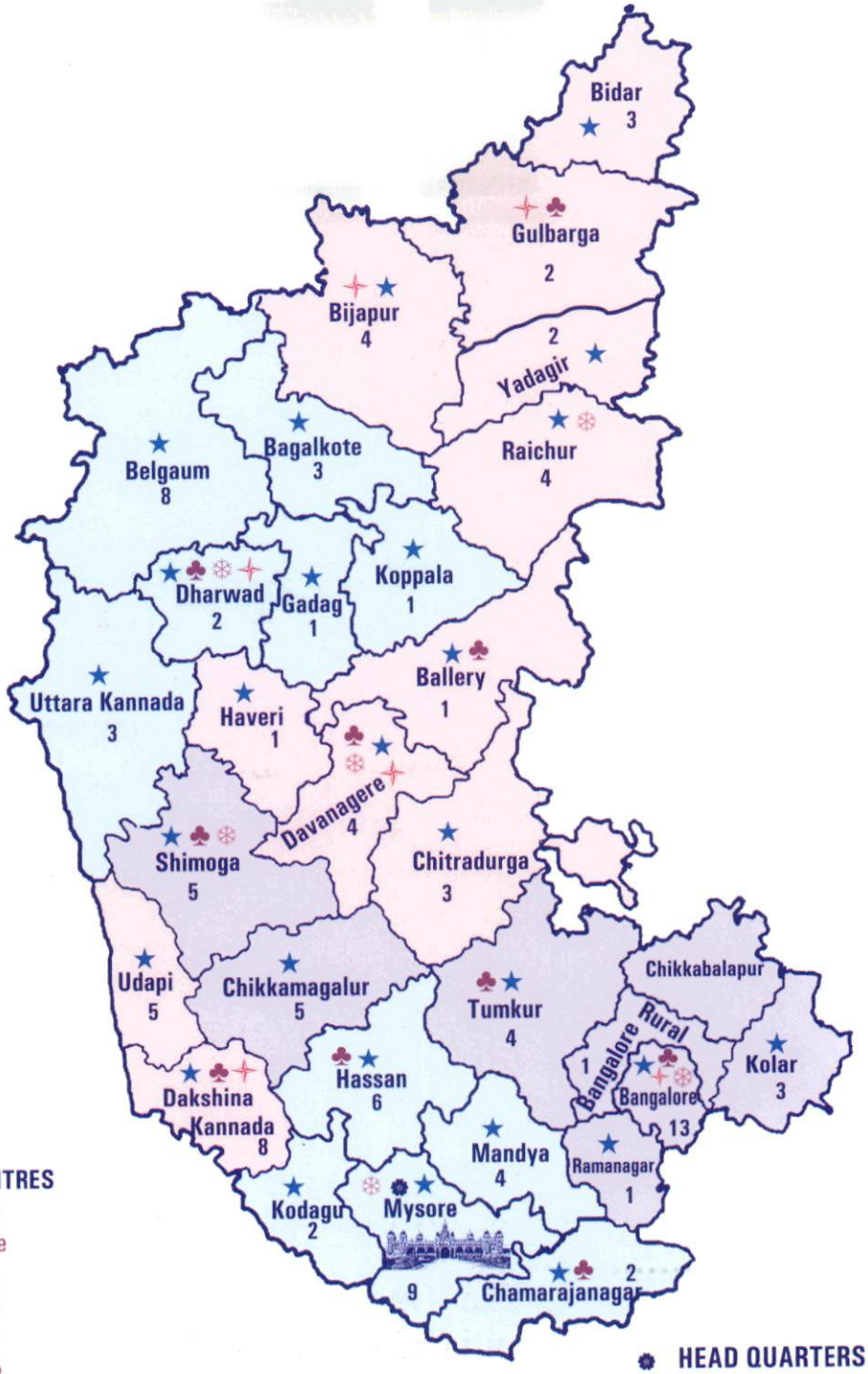

REGIONAL CENTRES

Bangalore
Davanagere
Gulbarga
Dharwad
Shimoga
Mangalore
Tumkur
Hassan
Chamarajanagar
Bellary

HEAD QUARTERS

Total Study Centres : 111

Regional Centres : 10

B.Ed Study Centres : 10

M.Ed Study Centres : 08

Karnataka State Open University

Manasagangothri, Mysore - 570 006.

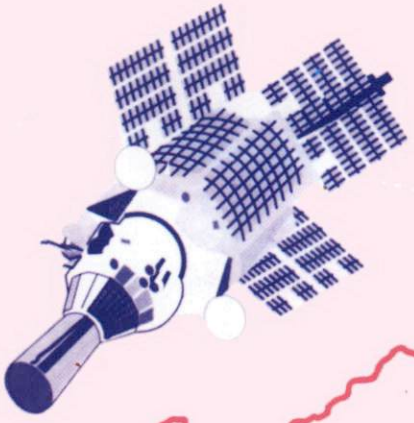

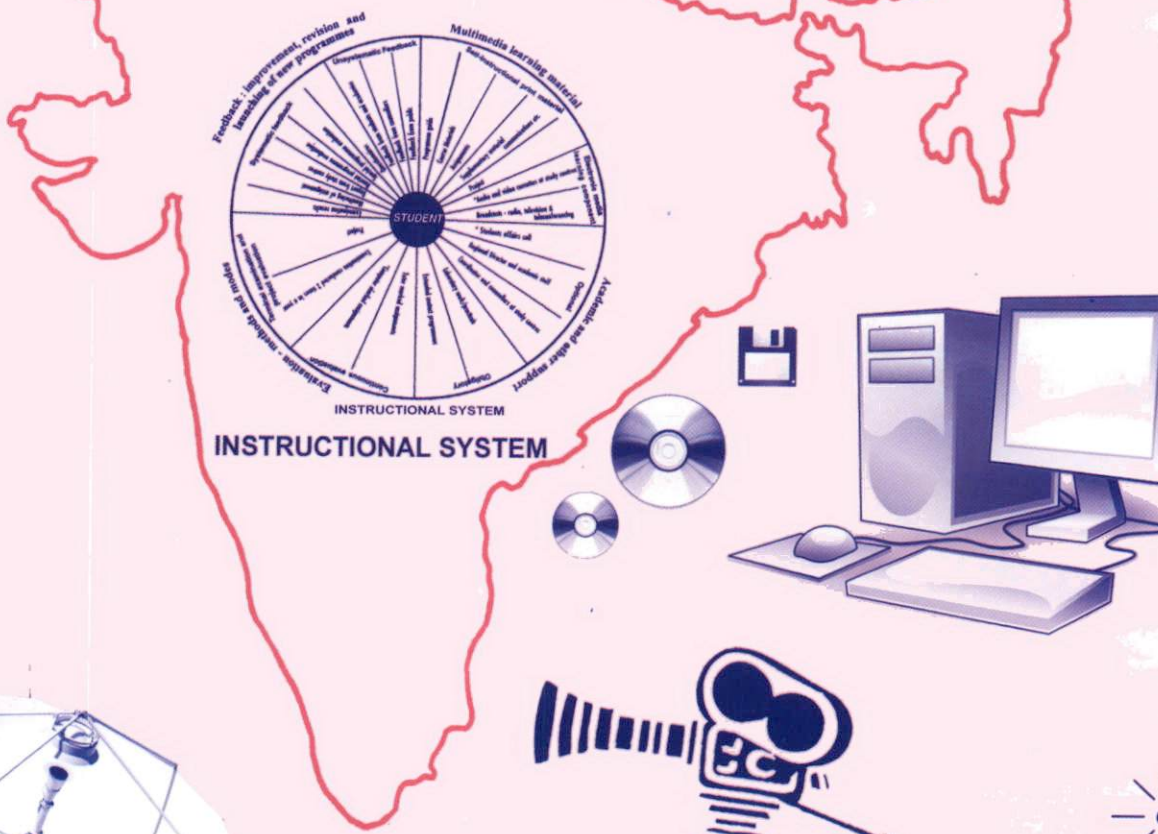

INSTRUCTIONAL SYSTEM